प्रकीर्णक-पुस्तकमालाका पञ्चम पुष्प

सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ

संयोजक और अनुवादक

जुगलकिशोर मुख़्तार, 'युगवीर'

सरसावा जि० सहारनपुर

[ग्रन्थपरीक्षा ४ भाग, स्वामी समन्तभद्र, जिनपूजाधिकारमीमांसा, उपासनातत्त्व, विवाहसमुद्देश्य, विवाहक्षेत्रप्रकाश, जैनाचार्योंका शासनभेद, वीरपुष्पाञ्जलि, हम दुखी क्यों हैं, मेरीभावना, अनित्यभावना, महावीरसंदेश, सिद्धिसोपान और भगवान महावीर और उनका समय आदि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता तथा अनेकान्तादि पत्रोंके सम्पादक।]

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

सरसावा जि० सहारनपुर

प्रथमावृत्ति	आश्विन, वीरनिर्वाण सं० २४७०	मूल्य
१००० प्रति	विक्रम संवत् २००१	आठ आने
	सन् १९४४	

पुस्तकानुक्रम

रामा प्रिंटिङ्ग प्रेस,
चावड़ीबाजार, देहली।

समर्पण

'त्वदीयं वस्तु भो विद्वन् !
तुभ्यमेव समर्पितम् ।'

सत्साधुओंके स्मरणको लिये हुए जिन आचार्यों अथवा विद्वानोंके जिन वाक्योंकी इस पुस्तकमे सयोजना की गई है वे वाक्यरत्न, उन वाक्योंके मर्मको व्यक्त करने-वाले अनुवादरूप व्यञ्जकमणिके साथ जड़ कर, उन्हीं महानुभावोंको, यह कहते हुए, सादर समर्पित है कि—

'हे विद्वद्गण । यह आपकी चीज है,
इस लिये आपको ही समर्पित है ।'

संयोजक

धन्यवाद

श्रीमान् बाबू नन्दलालजी जैन, सुपुत्र सेठ रामजीवनजी सरावगी, कलकत्ताने अपनी इकलौती पुत्री स्वर्गीया श्रीमती ताराबाई खेमकाकी पवित्र स्मृतिमें, उसकी अन्तसमयसे कुछ दिन पहलेकी इच्छाके अनुसार, एकहजार रुपयेकी रकम 'वीरसेवा-मन्दिर' सरसावाको ग्रन्थ प्रकाशनार्थ प्रदान की है। उसी सहायतासे यह सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की जा रही है और आगे और भी पुस्तकें प्रकाशित होंगी। इस उदारता और श्रुतसेवाके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

प्रकाशक

स्व० श्रीमती ताराबाई

प्रकीर्णक-पुस्तकमालाका पञ्चम पुष्प

सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ

संयोजक और अनुवादक

जुगलकिशोर मुख़्तार, 'युगवीर'

सरसावा जि० सहारनपुर

[ग्रन्थपरीक्षा ४ भाग, स्वामी समन्तभद्र, जिनपूजाधिकारमीमांसा, उपासनातत्त्व, विवाहसमुद्देश्य, विवाहक्षेत्रप्रकाश, जैनाचार्योंका शासनभेद, वीरपुष्पाञ्जलि, हम दुखी क्यों हैं, मेरीभावना, अनित्यभावना, महावीरसंदेश, सिद्धिसोपान और भगवान महावीर और उनका समय आदि अनेक ग्रन्थोंके रचयिता तथा अनेकान्तादि पत्रोंके सम्पादक।]

प्रकाशक

वीर-सेवा-मन्दिर

सरसावा जि० सहारनपुर

प्रथमावृत्ति	आश्विन, वीरनिर्वाण सं० २४७०	मूल्य
१००० प्रति	विक्रम संवत् २००१	आठ आने
	सन् १९४४	

पुस्तकानुक्रम

रामा प्रिंटिङ्ग प्रेस,

चावड़ीबाजार, देहली।

समर्पण

'त्वदीयं वस्तु भो विद्वन् !
तुभ्यमेव समर्पितम् ।'

सत्साधुओंके स्मरणको लिये हुए जिन आचार्यों अथवा विद्वानोंके जिन वाक्योंकी इस पुस्तकमे संयोजना की गई है वे वाक्यरत्न, उन वाक्योंके मर्मको व्यक्त करने-वाले अनुवादरूप व्यञ्जकमणिके साथ जड कर, उन्हीं महानुभावोंको, यह कहते हुए, सादर समर्पित है कि—

'हे विद्वद्गण । यह आपकी चीज है,
इस लिये आपको ही समर्पित है ।'

संयोजक

धन्यवाद

श्रीमान् बाबू नन्दलालजी जैन, सुपुत्र सेठ रामजीवनजी सरावगी, कलकत्ताने अपनी इकलौती पुत्री स्वर्गीया श्रीमती ताराबाई खेमकाकी पवित्र स्मृतिमें, उसकी अन्तसमयसे कुछ दिन पहलेकी इच्छाके अनुसार, एकहजार रुपयेकी रकम 'वीरसेवा-मन्दिर' सरसावाको ग्रन्थ प्रकाशनार्थ प्रदान की है। उसी सहायतासे यह सुन्दर पुस्तक प्रकाशित की जा रही है और आगे और भी पुस्तकें प्रकाशित होंगी। इस उदारता और श्रुतसेवाके लिये आपको हार्दिक धन्यवाद है।

प्रकाशक

स्व० श्रीमती ताराबाई

चित्र-परिचय

(जीवन-संक्षेप)

जिस सुन्दर सुकुमार चित्रको पाठक अपने सामने देख रहे हैं वह कलकत्ताके सुप्रसिद्ध व्यवसायी सेठ रामजीवनजी सरावगीकी पौत्री और वावू नन्दलालजी जैनकी इकलौती पुत्री श्रीमती तारावाईका चित्र है, जिसका जन्म कलकत्ता नगरमे प्रथम श्रावण शुक्ला त्रयोदशी विक्रम सवत् १९८५ को हुआ, जिसने सावित्री पाठशालामे लौकिक और घरपर धार्मिक शिक्षा प्राप्त की, दोनों प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करलेनेपर जिसका विवाह-सस्कार कलकत्तामे ही फतहपुर निवासी स्व० सेठ वालूरामजी खेमकाके ज्येष्ठ सुपुत्र चि० वावू शिवप्रसादजी खेमकाके साथ हुआ, युद्धके कारण कलकत्तामे भगदड मच जानेपर वैसाख शुक्ला पंचमी सवत् १९९९ को जिसके द्विरागमनकी रस्म राजगृही (राजगिरि) मे की गई, जो फतहपुर ससुरालमे जाकर कोई दो महीने वाद ही श्रावण मासमे बीमार पड गई, जिसने अपनेको अस्वस्थ देखकर और धार्मिक भावनासे प्रेरित होकर पिताजी-को अपने वाल्यकालकी जोड़ी हुई पूंजीमेसे एक हजार रुपयेके दानकी प्रेरणा की, और जो अन्तमे सभी योग्य उपायोंके निष्फल

होनेपर भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी स० १९९९ को १४ वर्षकी अवस्थामे ही अपनी यह जीवन लीला समाप्त कर गई। और उसके द्वारा संसारकी असारताका सजीव पाठ पढाते हुए यह बतला गई कि— जीवन क्षणभंगुर है, उसका कोई भरोसा नहीं, उसकी स्थिरताके भरोसे रहकर किसीको भी आत्म-विस्मरण न करना चाहिए— सदा ही सत्साधुओंकी तरह आत्म-साधनामे तत्पर रहना चाहिए। रोगादिकके आ धर दबानेपर इच्छा रहते भी फिर कुछ नहीं बनता और आयुका कब अन्त आजाए इसका किसीको पता नहीं। साथ ही, यह भी बतला गई कि बाल्य-विवाहसे किसीको भी सुख नहीं मिलता।

यह सुशील बालिका धार्मिक रुचिको लिए हुए अच्छी तीक्ष्ण-बुद्धि थी और सबको प्रिय मालूम देनेवाली एक विकासोन्मुख सुन्दर सुकुमार कली थी, जिसके अकालमे ही काल-कवलित होजानेसे माता-पिता तथा अन्य कुटुम्बीजनोंको भारी आघात पहुँचा है। साथ ही समाजकी भी कुछ कम क्षति नहीं हुई है। स्वर्गीय आत्माको परलोकमे सुख-शान्तिकी प्राप्ति होवे।

प्रस्तावना

सत्साधुओंका स्मरण बडा ही मंगल-दायक है। 'चत्तारि मंगलं'में 'साहू मंगलं' पदके द्वारा साधुओंको भी मंगलमय निर्दिष्ट किया है। सत्साधुजन अहिंसादि पंच व्रतोंका पालन करते हुए कषायोंको जीतते हैं, इन्द्रियोंका निग्रह करते हैं—,इन्द्रियों-को अपने अधीन रखते हैं—इन्द्रियोंके विषयोंकी आशा नहीं रखते हैं, आरम्भ तथा परिग्रहसे रहित होते हैं और ज्ञान, ध्यान एवं तपमें सदा लीन रहते हैं। और इस तरह आत्मसाधना करते हुए अपना आत्मविकास सिद्ध करते हैं तथा अपने आदर्शादि द्वारा दूसरोंके आत्मविकासमें सहायक होते हैं। इसीसे सत्सा-धुओंको सुकृती, पुण्याधिकारी, पुण्यात्मा, पूतात्मा और पुण्यमूर्ति जैसे नामोंसे भी उल्लेखित किया जाता है। ऐसे पूतात्मा साधु-पुरुषोंका संसर्ग अथवा सत्संग जिस प्रकार आत्माको जगाने, ऊंचा उठाने और पवित्र बनानेमें सहायक होता है उसी प्रकार उनके पुण्यगुणोंका स्मरण भी पापोंसे हमारी रक्षा करता है और हमें पवित्र बनाता हुआ आत्मविकासकी ओर अग्रसर करता है। जैसा कि स्वामी समन्तभद्रके निम्न वाक्यसे प्रकट है —

'तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनाति चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः।'

—स्वयम्भू स्तोत्र

स्वामी समन्तभद्रने जहाँ परमसाधुओंके स्तवनको 'जन्मारण्य-शिखी'—जन्म-मरणरूपी संसार-वनको भस्म करनेवाली अग्नि-बतलाया है वहां 'स्मृतिरपि क्लेशाम्बुधेर्नौः' इस वाक्यके द्वारा उनकी स्मृतिको दुःख-समुद्रसे पार करनेके लिये नौका भी प्रकट किया

है*। वे इन स्तवनों तथा स्मरणोंको कुशल परिणामका—पुण्य-प्रसाधक शुभ भावोंका—कारण वतलाते है और इनके द्वारा श्रेयोमार्गका सुलभ तथा स्वाधीन होना प्रतिपादन करते है‡। और यह उनका केवल वतलाना तथा प्रतिपादन करना ही नही वल्कि स्वानुभवपूर्ण कथन है—वे स्वय इन स्मरणादिकोंके रूपमे की गई सेवाके प्रभावसे ही अपनेको तेजस्वी, सुजन तथा सुकृती (पुण्यवान्) होना प्रकट करते हैं†। और इससे इन स्मरणोंका महत्व विलकुल स्पष्ट होजाता है।

जव जव मैं स्वामी समन्तभद्रादि जैसे महान् आचार्योंके पुरातन स्मरणोंको पढता रहा हूँ तव तव मेरे हृदयमे वडे ही पुष्ट विचार उत्पन्न हुए है, औद्धत्य तथा अहकार मिटा है, अपनी त्रुटियोंका वोध हुआ है और गुणोंमे अनुराग वढकर आत्म-विकासकी ओर कुछ रुचि पैदा हुई है। साथ ही, अनेक उलझने भी सुलझी हैं। इन स्मरणोंको पढ़ते हुए सदा ही मेरी यह भावना रही है कि मुझे जो आनन्द तथा लाभ इनसे प्राप्त होता है वह दूसरोंको भी होवे। इसीसे मै कितने ही स्मरणोंको, उनके मर्मस्पर्शी हिन्दी अनुवादके साथ 'अनेकान्त' पत्रमे प्रकट करता रहा हूँ। वहुत दिनोंसे मेरी इच्छा थी कि मै उन सव स्मरणोंको, जो मेरी मति तथा स्मृतिको प्रदीप्त करते हुए मेरे आनन्दका विषय रहे है, एक मगलपाठके रूपमे सयोजित करूँ, जिससे इधर उधर विखरे हुए उत्तम स्मरणोंका एक अच्छा एकत्र संग्रह होजाय और उससे सभी जन यथेष्ट लाभ उठा सके। उसीके फलस्वरूप आज यह

---

* देखो, जिनशतक पद्य ११५।

‡ देखो, स्वयम्भूस्तोत्र पद्य ११६। † देखो, जिनशतक पद्य ११४।

सानुवाद मगलपाठ पाठकोंकी सेवामे प्रस्तुत है और इसे प्रस्तुत करते हुए मुझे बडा ही आनन्द होता है।

इस मङ्गलपाठमे अनेक सत्साधुओंके पुण्य स्मरणोंकी सयोजना की गई है। श्रीवीर जिनेन्द्र और उनके उत्तरवर्ती गणधरादि २१ महान् प्रभावशाली आचार्योंके महत्वपूर्ण स्मरणोंका यह सग्रह है, जिनके स्मरणकर्ता अनेक आचार्य, भट्टारक, विद्वान्, कविजन अथवा शिलालेखोंके लिखानेवाले महानुभाव हुए हैं। स्मरणकर्त्ता आचार्योंमे कितने ही आचार्य तो इतने महान् हैं कि वे खुद भी अनेक आचार्यों तथा विद्वानों आदिके द्वारा स्मरण किये गये हैं जैसे स्वामी समन्तभद्र, अकलङ्क, विद्यानन्द, वीरसेन, और जिनसेनादिक। इन स्मरणोंकी सख्या सब मिलाकर १३६ है। जिन महान् आत्माओंके ये स्मरण हैं उन्हें यथासाध्य कालक्रमसे रक्खा गया है, परन्तु स्मरणकर्त्ताओंमे कालक्रमके नियमको चरितार्थ नहीं किया गया, उनके स्मरणोंका संकलन विषयादिककी कुछ दूसरी ही दृष्टिको लिये हुए है। जहाँसे जो स्मरण लिये गये हैं उन ग्रन्थादिकोंके नाम मूल स्मरणोंके नीचे दे दिये गये हैं। साथ ही, शिलालेखोंको छोडकर, अन्य सब स्मरणकर्त्ताओंके शुभनाम भी साथमे दे दिये गये हैं, जिससे स्मृत व्यक्तियों और स्मरणकर्त्ताओंका एक साथ बोध हो सके।

आचार्योंमे सबसे अधिक सस्मरण स्वामी समन्तभद्रके हैं और वे इस पुस्तकके २७ पृष्ठोंपर आये हैं, जबकि अकलङ्कादिक दूसरे महान् आचार्योंके स्मरण ५, ४, ३, २ आदि पृष्ठोंपर ही आसके हैं। समन्तभद्रके गुणों, उपकारों और उनकी मौलिक कृतियोंका कुछ ऐसा प्रभाव सर्वत्र व्याप्त हुआ है कि श्रीअकलङ्क-

देव, विद्यानन्द, जिनसेन और वादिराज जैसे महान् आचार्यों और कविनागराज जैसे भक्तहृदय विवेकी विद्वानोंने उनका खूब खुलकर यशोगान किया है। आचार्य विद्यानन्द तो उनके गुणों-का कीर्तन करते करते अघाए ही नहीं। ऐसा मालूम होता है कि वे इन्द्रकी तरह सहस्रनयन बनकर समन्तभद्रकी ओर बराबर देखते रहे हैं और तृप्त नहीं हो पाये।

ये सब संस्मरण स्मृत व्यक्तियोंके कितने ही इतिहास, प्रभाव उपकार, माहात्म्य, गुणोत्कर्ष और साहित्य-सेवादिके उल्लेखों-को लिये हुए हैं, आत्मामें एक प्रकारकी स्फूर्ति-जागृति उत्पन्न करते हैं और विशुद्धता लाते हैं। इनमें जैनधर्मके विश्वव्यापी प्रभाव तथा आत्माकी अचिन्त्य शक्तियोंका दर्शन होता है। जैन-धर्मकी नीति और उसके मूलसिद्धान्तोंका इनसे कितना ही पता चलता है, पूर्वजोंका गौरव मूर्तिमान होकर सामने आ जाता है, अपने कर्तव्यका बोध होता है और आत्मविकास तथा लोकसेवा-के लिये कुछ-न-कुछ करनेको जी चाहता है। और इस तरह ये संस्मरण बहुत उपकारी तथा मङ्गलकारी हैं। हमें नित्य ही इनका पाठ करके अपने आत्माको पवित्र करना तथा ऊँचे उठाना चाहिये।

जिन आचार्योंके स्मरणोंका यहाँ संकलन किया गया है वे विक्रम संवत् से कोई ४७० वर्ष पहलेसे लेकर विक्रमकी ११वीं शताब्दी तक हुए हैं। मैं उनका और उनके स्मरणकर्ताओंका समयादिके साथ कुछ ऐतिहासिक विशेष परिचय और देना चाहता था, परन्तु अनवकाशसे लगातार बहुत ज्यादा घिरा रहनेके कारण मैं उसे इस समय नहीं दे सका। पुस्तकके दूसरे संस्करणके अव-सरपर उसे देनेका यत्न किया जायगा।

वीर-सेवा-मन्दिर, सरसावा

जुगलकिशोर मुख्तार

विषय-सूची

णमो लोए सव्वसाहूणं

सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठ

मंगलं भगवान् वीरो
मंगलं गौतमो गणी ।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो
जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥

१

लोक-मङ्गल-कामना

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः
काले काले च सम्यग्विकिरतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम् ।
दुर्भिक्षं चौर-मारी क्षणमपि जगतां मा स्म भूज्जीवलोके
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्व-सौख्य-प्रदायि ॥

—जैन नित्यपाठ

'सम्पूर्ण प्रजा-जनोंको भले प्रकार कुशल-क्षेमकी प्राप्ति होवे—सारी जनता यथेष्टरूपमें सुखी रहे—राजा शक्तिसम्पन्न और धार्मिक बने—धर्ममें अच्छी तरह निष्ठावान् (श्रद्धा एवं प्रवृत्तिको लिये हुए) होवे—अथवा धार्मिक राजाका बल खूब बढ़े (जिससे अन्याय-अत्याचारोंका मुख न देखना पड़े), समय समयपर ठीक वर्षा हुआ करे—अतिवृष्टि, अल्पवृष्टि और अनावृष्टिसे किसीको भी पाला न पड़े—, व्याधियाँ—बीमारियाँ नाशको प्राप्त हो जावें, जगत्के जीवोंको दुर्भिक्ष (अकाल), चोरी, और मरी (प्लेग-हैजा आदि संक्रामक रोगों)की बला एक क्षणके लिये भी न सतावे, और जैनेन्द्र-धर्मचक्र—श्रीजिनेन्द्रका उत्तमक्षमा-मार्दव-आर्जव-सत्य-शौच-संयम-तप-त्याग-आकिंचन्य-ब्रह्मचर्यरूप दशलक्षणधर्म अथवा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रयधर्म—, जो सब जीवोंको सुखका देने वाला अथवा पूर्ण सुखका प्रदाता है वह लोकमें सदा अस्खलितरूपसे निर्बाध प्रवर्ते—उसमें कभी कोई बाधा न पड़े।'

२

नित्यकी आत्म-प्रार्थना

शास्त्राऽभ्यासो जिनपति-नुतिः सङ्गतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुण-गण-कथा दोषवादे च मौनम् ।
सर्वस्याऽपि प्रिय-हित-वचो भावना चाऽऽत्मतत्त्वे
सम्पद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥

—जैन नित्यपाठ

'जब तक मुझे अपवर्गकी—मोक्षकी—प्राप्ति नहीं होती तब तक भव-भवमें—जन्म-जन्ममें—मेरा शास्त्र-अभ्यास बना रहे—मैं ऐसे ग्रन्थोंके स्वाध्यायसे कभी न चूकूँ जो आप्त पुरुषोंके कहे हुए अथवा आप्तकथित विषयका प्रतिपादन करनेवाले हों, तत्त्वके उपदेशको लिये हुए हों, सर्वके लिए हितरूप हों, अबाधित-सिद्धान्त हों और कुमार्गसे हटाने वाले हों—; साथ ही, जिनेन्द्र-के प्रति मैं सदा ही नम्रीभूत रहूँ—सर्वज्ञ, वीतराग और परम-हितोपदेशी श्रीजिनदेवके गुणोंके प्रति मेरे हृदयमें सदा ही भक्तिभाव जाग्रत रहे—, मुझे नित्य ही आर्यपुरुषोंकी—सत्पुरुषों-की— सगतिका सौभाग्य प्राप्त होवे—कुसङ्गतिमें बैठने अथवा दुर्जनोंके सम्पर्कमें रहकर उनके प्रभावसे प्रभावित होनेका कभी भी अवसर न मिले—, सच्चरित्र-पुरुषोंकी गुण-गण-कथा ही मुझे सदा आनन्दित करे—मैं कभी भी विकथाओंके कहने-सुननेमें प्रवृत्त न होऊँ—, दोषोंके कथनमें मेरी जिह्वा सदा ही मौन

धारण करे—मै कषायवश किसीके दोषोंका उद्घाटन न करूँ—, मेरी वचन-प्रवृत्ति सबके लिये प्रिय तथा हितरूप होवे—कषाय-से प्रेरित होकर मै कभी भी ऐसा बोल न बोलूँ अथवा ऐसा वचन मुँहसे न निकालूँ जो दूसरोंको अप्रिय होनेके साथ साथ अहितकारी भी हो—, और आत्म-तत्त्वमे मेरी भावना सदा ही बनी रहे—मै एक क्षणके लिये भी उसे न भूलूँ, प्रत्युत उसमे निरन्तर ही योग देकर आत्म-विकासकी सिद्धिका बराबर प्रयत्न करता रहूँ। यही मेरी नित्यकी आत्म-प्रार्थना है।'

३

साधु-वेष-निदर्शक जिन-स्तुति

[परमसाधु श्रीजिनदेव—जैनतीर्थकर—अपनी योग-साधना एव अर्हन्त-अवस्थामे वस्त्रालकारों तथा शस्त्रास्त्रोंसे रहित होते है। ये सब चीजें उनके लिये व्यर्थ है। क्यों व्यर्थ हैं? इस भावको कविवर वादिराजसूरिने अपने 'एकीभाव' स्तोत्रके निम्न पद्यमे बडे ही सुन्दर एव मार्मिक ढगसे व्यक्त किया है और उसके द्वारा ऐसी वस्तुओंसे प्रेम रखनेवालोंकी असलियतको भी खोला है। इसीसे यह स्तुति, जो सत्यपर अच्छा प्रकाश डालती है, बडी ही प्यारी मालूम होती और अतीव शिक्षाप्रद जान पडती है।]

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः

शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।

सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषाम्
तत्किं भूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥

'हे परमसाधु श्रीजिनदेव! शृंगारोंके लिये बड़ी बड़ी इच्छाएँ वही करता है जो स्वभावसे ही अमनोज्ञ अथवा कुरूप होता है, और शस्त्रोंका ग्रहण-धारण भी वही करता है जो वैरीके द्वारा शक्य-जय्य अथवा पराजित होनेके योग्य होता है। आप सर्वाङ्गोंमें सुभग हैं—कोई भी अङ्ग आपका ऐसा नहीं जो असुन्दर अथवा कुरूप हो—और दूसरोंके द्वारा आप शक्य भी नहीं हैं—कोई भी आपको अभिभूत या पराजित नहीं कर सकता। इसीसे शरीर-शृङ्गाररूप आभूषणों, वस्त्रों तथा पुष्पमालाओं आदिसे आपका कोई प्रयोजन नहीं है, और न शस्त्रों तथा अस्त्रोंसे ही कोई प्रयोजन है—शृङ्गारादिकी ये सब वस्तुएँ आपके लिये निरर्थक हैं, इसीसे आप इन्हें धारण नहीं करते। वास्तवमें इन्हें वे ही लोग अपनाते हैं जो स्वरूपसे ही असुन्दर होते हैं अथवा कमसे कम अपनेको यथेष्ट सुन्दर नहीं समझते और जिन्हें दूसरों-द्वारा हानि पहुँचने तथा पराजित होने आदिका महाभय लगा रहता है, और इसलिये वे इन आभूषणादिके द्वारा अपने कुरूप-को छिपाने तथा अपने सौन्दर्यमें कुछ वृद्धि करनेका उपक्रम किया करते हैं, और इसी तरह शस्त्राऽस्त्रोंके द्वारा दूसरोंपर अपना आतङ्क जमाने तथा दूसरोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेका प्रयत्न भी किया करते हैं।'

४

परमसाधु-मुख-मुद्रा

अताम्रनयनोत्पलं सकलकोपवन्हेर्जयात्
कटाक्षशरमोक्षहीनमविकारतोद्रेकतः ।
विषाद-मद-हानितः प्रहसितायमानं सदा
मुखं कथयतीव ते हृदय-शुद्धिमात्यन्तिकीम् ॥

—चैत्यभक्ति

'(हे परमसाधु जिनेन्द्र !) आपका मुख, सपूर्ण कोप-वन्हिपर विजय प्राप्त होनेसे—अनन्तानुबन्ध्यादि-भेद-भिन्न समस्त क्रोध-रूप अग्निका क्षय हो जानेसे—, अताम्रनयनोत्पल है—उसमे स्थित दोनों नयन-कमल-दल सदा अताम्र रहते हैं, उनमे कभी क्रोधसूचिका-सुर्खी नहीं आती, और अविकारताके उद्रेकसे—वीत-रागताकी आपमे परमप्रकर्षको प्राप्ति होनेसे—कटाक्षवाणोंके मोचन-व्यापारसे रहित है—कामोद्रेकादिके वशीभूत होकर तिर्यग्दृष्टिपातरूप कटाक्षवाणोंको छोडने जैसी कोई क्रिया नहीं करता है। साथ ही, विषाद और मदकी सर्वथा हानि हो जानेसे—उनका अस्तित्व ही आपके आत्मामे न रहनेसे—सदा ही प्रहसितायमान रहता है—प्रहसित-प्रफुल्लितकी तरह आचरण करता हुआ निरन्तर ही प्रसन्न बना रहता है। इन तीन विशेषणोंसे विशिष्ट आपकी मुख-मुद्रा आपकी आत्यन्तिकी—अविनाशी—हृदयशुद्धिका द्योतन करती है। भावार्थ—हृदयको

अशुद्ध करनेवाले क्रोध, कामादिविकार, मद और विषाद हैं, ये जिनके नष्ट होजाते हैं उनका मुख उक्त तीनों—अताम्रनयनोत्पलत्व, कटाक्षशरमोक्षहीनत्व, सदाप्रहसितायमानत्व—विशेषणोंसे विशिष्ट हो जाता है। जिनेन्द्रका मुख चूँकि इन तीनों विशेषणोंसे विभूषित है इसलिये वह उनके हृदयकी उस शाश्वती 'शुद्धि'को स्पष्ट घोषित करता है जो काम, क्रोध, मद और विषादादिका सर्वथा अभाव हो जानेसे सम्पन्न होती है। हृदयशुद्धिकी इस कसौटी अथवा माप-दण्डसे दूसरोंके हृदयकी शुद्धिका भी कितना ही अन्दाजा और पता लगाया जा सकता है।'

५

सत्साधु-वन्दन

जियभय-जियउवसग्गे जियइंदिय-परिसहे जियकसाए।
जियराय-दोस-मोहे जियसुह-दुक्खे णमंसामि॥

—योगिभक्तौ, श्रीकुन्दकुन्दाचार्यः

'जिन्होंने भयोंको जीत लिया—जो इस लोक, परलोक तथा आकस्मिकादि किसी भी प्रकारके भयके वशवर्ती होकर अपने पदसे, कर्त्तव्यसे, व्रतोंसे, न्याय्य-नियमोंसे च्युत नहीं होते, न अन्याय-अत्याचार तथा पर-पीडनमें प्रवृत्त होते हैं और न किसी तरहकी दीनता ही प्रदर्शित करते हैं। जिन्होंने उपसर्गोंको जीत लिया—जो चेतन-अचेतन-कृत उपसर्गों-उपद्रवोंके उपस्थित

होनेपर समताभाव धारण करते हैं, अपने चित्तको कलुषित अथवा शत्रुतादिके भावरूप परिणत नहीं होने देते। जिन्होंने इन्द्रियोंको जीत लिया—जो स्पर्शनादि पंचेन्द्रिय-विषयोंके वशीभूत (गुलाम) न होकर उन्हे स्वाधीन किए हुए हैं। जिन्होंने परीषहोंको जीत लिया—जो भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी, विषकण्टक, वध-बन्धन, अलाभ और रोगादिककी परीषहों-बाधाओंको सम-भावसे सह चुके है। जिन्होंने कषायोंको जीत लिया—जो क्रोध, मान, माया, लोभ तथा हास्य शोक और कामादिकसे अभिभूत होकर कोई काम नहीं करते। जिन्होंने राग, द्वेष और मोहपर विजय प्राप्त किया है—जो राग, द्वेष, मोहकी अधीनता छोडकर स्वाधीन बने हैं। और जिन्होंने सुख-दुःखको भी जीत लिया है—सुखके उपस्थित होनेपर जो हर्ष नहीं मनाते और न दुःखके उपस्थित होनेपर चित्तमे किसी प्रकारका उद्वेग, सक्लेश अथवा विकार ही लाते हैं। उन सभी सत्साधुओंको मै नमस्कार करता हूँ—उनकी वन्दना-उपासना-आराधना करता हूँ, फिर वे चाहे कोई भी, कहीं भी और किसी नामसे भी क्यों न हों।

६
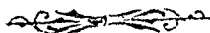
श्रीवीर-वर्द्धमान-स्मरण

१ वीर-जिन-वन्दन—

शुद्धि-शक्त्योः परां काष्ठां योऽवाप्य शान्तिमुत्तमाम् ।
देशयामास सद्धर्मं तं वीरं प्रणमाम्यहम् ॥

—युगवीर

'जिन्होंने, ज्ञानावरण और दर्शनावरणके विनाशसे निर्मल ज्ञानदर्शनकी आविर्भूतिरूप शुद्धिकी तथा अन्तराय कर्मके क्षयसे वीर्यलब्धिरूप शक्तिकी पराकाष्ठाको—उत्कृष्ट अवस्था अथवा चरम-सीमाको—प्राप्त करके और मोहनीय कर्मके समूल विध्वंससे आत्मामें प्रशमसुख-स्वरूप उत्तमशान्तिकी प्राप्ति करके, समीचीन धर्मकी देशना की है उन श्रीवीर भगवान्‌को मैं प्रणाम करता हूँ—गुणानुरागपूर्वक उनके सामने नत-मस्तक होता हूँ।

नमः श्रीवर्द्धमानाय निर्धूत-कलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥

—रत्नकरण्डश्रावकाचारे, श्रीसमन्तभद्र'

'जिनकी विद्या—केवलज्ञान-ज्योति—अलोक-सहित तीनों लोकोंके लिये दर्पणकी तरह आचरण करती है—उन्हें अपनेमें स्पष्टरूपसे प्रतिबिम्बित करती है। अर्थात् जिनके केवल-ज्ञानमें अलोक-सहित तीनों लोकके सभी पदार्थ साक्षात् रूपसे प्रतिभासित

होते हैं और अपने इस प्रतिभास-द्वारा ज्ञान-स्वरूप आत्मामे कोई विकार उत्पन्न नहीं करते—वह दर्पणकी तरह निर्विकार बना रहता है, उन निर्धूत-कलिलात्मा—अपने आत्मासे राग-द्वेष काम-क्रोधादिरूप सकल पाप-मलको धोकर उसे पूर्ण निर्मल एव निर्विकार बनानेवाले—श्रीमान वर्द्धमानको—भारतीविभूति अथवा आर्हन्त्य-लक्ष्मीरूप श्रीसे सम्पन्न अन्तिम जैन तीर्थंकर श्रीवीर भगवान्‌को—मेरा नमस्कार हो—मै उनके गुणोत्कर्षके आगे नम्र होकर सिर झुकाता हूँ।'

सद्दृष्टि-ज्ञान-वृत्तात्मा मोक्ष-मार्गः सनातनः।
आविरासीद्यतो वन्दे तमहं वीरमच्युतम् ॥

—तत्त्वार्थसूत्रे, श्रीप्रभाचन्द्र

'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप सनातन मोक्षमार्ग जिनसे—जिनके उपदेशसे—आविर्भूत हुआ—लोकमे पुन प्रकट हुआ—उन अच्युत (अमर-अविनाशी) वीरकी मैं वन्दना करता हूँ—उन्हे अपना मार्गदर्शक आदर्श-पुरुष मानकर उनके सामने नत-मस्तक होता हूँ।'

२ वीर-जिन-स्तवन—

कीर्त्या महत्या भुवि वर्द्धमानं त्वां वर्द्धमानं स्तुति-गोचरत्वम्।
निनीषवः स्मो वयमद्य वीरं विशीर्ण-दोषाऽऽशय-पाश-बन्धम्॥

—युक्त्यनुशासने, श्रीसमन्तभद्र॰

'हे वीर जिन!—इस युगके अन्तिम तीर्थप्रवर्तक परमदेव! आप दोषों और दोषाऽऽशयोंके पाश-बन्धनसे विमुक्त हुए है—

आपने अज्ञान-अदर्शन-राग-द्वेष-काम-क्रोधादि विकारों अर्थात् विभाव परिणामरूप भावकर्मों और इन दोषात्मक भावकर्मों-के संस्कारक कारणों अर्थात् ज्ञानावरण-दर्शनावरण-मोहनीय-अन्तरायरूप द्रव्यकर्मोंके जालको छिन्न-भिन्न कर स्वतन्त्रता प्राप्त की है—, आप निश्चितरूपसे ऋद्धमान (प्रवृद्ध-प्रमाण) हैं—आपका तत्त्वज्ञानरूप प्रमाण (केवलज्ञान) स्याद्वाद-नयसे संस्कृत होनेके कारण प्रवृद्ध है—सर्वोत्कृष्ट एवं अबाध्य है, और आप महती कीर्तिसे भूमण्डलपर वर्द्धमान हैं—जीवादि-तत्त्वार्थोंका कीर्तन (सम्यग्वर्णन) करनेवाली युक्ति-शास्त्राऽवि-रोधिनी दिव्य-वाणीसे साक्षात् समवसरण-भूमिपर तथा परम्परा-से परमागमकी विषयभूत सारी पृथ्वीपर छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, निकटवर्ती-दूरवर्ती, तत्कालीन और उत्तरकालीन सभी पर-अपर परीक्षकजनोंके मनोंको संशयादिके निरसन-द्वारा पुष्ट एवं व्याप्त करते हुए आप वृद्धि (व्यापकता) को प्राप्त हुए हैं—सदा सर्वत्र और सबोंके लिये 'युक्ति-शास्त्राऽविरोधि-वाक्' के रूपमें अवस्थित हैं, यह बात परीक्षा-द्वारा सिद्ध हो चुकी है। (अतः) अब—परी-क्षाऽवसानके समय—(आप्तमीमांसाद्वारा) युक्ति-शास्त्राऽविरोधि-वाक्त्व-हेतुसे परीक्षा करके यह निर्णय कर चुकनेपर कि आप विशीर्ण-दोषाशय-पाश-बन्धत्वादि तीन असाधारण गुणों (कर्म-भेत्तृत्व, सर्वज्ञत्व, परमहितोपदेशकत्व) से विशिष्ट हैं—आपको स्तुतिगोचर—स्तुतिका विषयभूत आप्तपुरुष—मानकर, हम—परीक्षाप्रधानी मुमुक्षुजन—आपको अपनी स्तुतिका विषय बनाना चाहते हैं—आपकी स्तुति करनेमें प्रवृत्त होना चाहते हैं।'*

* इसके अनन्तर ही 'युक्त्यनुशासन' ग्रंथमें स्वामी समन्तभद्रने वीर-

अनन्तविज्ञानमतीत-दोषमबाध्य-सिद्धान्तममर्त्य-पूज्यम् ।
श्रीवर्द्धमानं जिनमाप्तमुख्यं स्वयम्भुवं स्तोतुमहं यतिष्ये ॥

—अन्ययोगव्यवच्छेदिकायां, श्रीहेमचन्द्र

'जो अनन्त-विज्ञान-स्वरूप हैं, दोषोंसे—राग-द्वेष-काम-क्रोधादि विकारोंसे—रहित है, जिनका सिद्धान्त (आगम) अबाध्य है—वादी प्रतिवादीके द्वारा अखण्डनीय है—, जो देवोंसे पूज्य है और स्वयम्भू है—स्वय ही विना किसी दूसरेके उपदेशके मोक्ष-मार्गको जानकर तथा उसका अनुष्ठान कर आत्म-विकासको प्राप्त हुए हैं—उन आप्त-पुरुषोंमे मुख्य श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्रके स्तवनका मै यत्न करता हूँ ।'

स्थेयाज्जातजयध्वजाऽप्रतिनिधिः प्रोद्भूतभूरिप्रभुः
प्रध्वस्ताऽखिल-दुर्नय-द्विपदिभः सन्नीतिसामर्थ्यतः ।
सन्मार्गस्त्रिविधः कुमार्ग-मथनोऽर्हन्वीरनाथः श्रिये
शश्वत्संस्तुति-गोचरोऽनवधियां श्रीसत्यवाक्याधिपः ॥

—युक्त्यनुशासन-टीकायां, श्रीविद्यानन्द

'जो जयध्वज प्राप्त करनेवालोंमे अद्वितीय है, जिनके महान् सामर्थ्य अथवा महती प्रभुताका प्रादुर्भाव हुआ है, जिन्होंने सन्नीतिकी—अनेकान्तमय स्याद्वाद-नीतिकी—सामर्थ्यसे सपूर्ण दुर्नयरूप शत्रुगजोंको ध्वस्त (विनष्ट) कर दिया है, जो त्रिविध-

प्रभु और उनके शासनका वैशिष्ट्य स्थापन करनेवाली अपूर्व स्तुति की है । यह ग्रन्थ 'समन्तभद्रभारती' नामका जो महान् ग्रन्थ वीरसेवामन्दिरसे प्रकाशित होनेवाला है उसमे सानुवाद प्रकट होगा ।

सन्मार्ग-स्वरूप हैं — सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्रकी साक्षात् मूर्ति हैं—, जिन्होंने कुमार्गोंको मथन कर डाला है, जो सदा कलुषित-आशयसे रहित सुधीजनोंकी सत्स्तुतिका विषय बने हुए हैं और श्रीसम्पन्न-सत्यवाक्योंके अधिपति अथवा आगमके स्वामी हैं, वे अर्हन्त भगवान् श्रीवीर प्रभु कल्याणके लिये स्थिर रहें—चिरकाल तक लोक-हृदयोंमें निवास करें।'

३ वीर-शासनाभिनन्दन—

तव जिन शासन-विभवो
जयति कलावपि गुणाऽनुशासन-विभवः।
दोष-कशाऽसनविभवः
स्तुवन्ति चैनं प्रभा-कृशाऽऽसनाविभवः ॥

—स्वयम्भूस्तोत्रे, श्रीसमन्तभद्रः

'(हे वीर जिन!) आपका शासन-माहात्म्य—आपके प्रवचनका यथावस्थित पदार्थोंके प्रतिपादन-स्वरूप गौरव—कलिकालमें भी जयको प्राप्त है—सर्वोत्कृष्टरूपसे वर्त रहा है—, उसके प्रभावसे गुणोंमें अनुशासन-प्राप्त शिष्यजनोंका भव विनष्ट हुआ है—संसार-परिभ्रमण सदाके लिये छूटा है—इतना ही नहीं, किन्तु जो दोषरूप चाबुकोंका निराकरण करनेमें समर्थ हैं—चाबुककी तरह पीडाकारी काम-क्रोधादि दोषोंको अपने पास फटकने नहीं देते—और अपने ज्ञानादि-तेजसे जिन्होंने आसन-विभुओंको—लोकके प्रसिद्ध नायकों(हरि-हरादिकों) को—निस्तेज किया है वे—गणधर-देवादि महात्मा—भी आपके इस शासन-माहात्म्यकी स्तुति करते हैं।'

दया-दम-त्याग-समाधिनिष्ठं नय-प्रमाण-प्रकृताञ्जसार्थम् ।
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥

युक्त्यनुशासने, श्रीसमन्तभद्र

'हे वीर जिन। आपका मत—शासन—नय-प्रमाणके द्वारा वस्तु-तत्त्वको बिल्कुल स्पष्ट करनेवाला और सम्पूर्ण प्रवादियोंसे अबाध्य होनेके साथ साथ दया (अहिंसा), दम (संयम), त्याग और समाधि (प्रशस्त ध्यान) इन चारोंकी तत्परताको लिये हुए है। यही सब उसकी विशेषता है, और इसीलिये वह अद्वितीय है।'

सर्वान्तवत्तद्गुण-मुख्य-कल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

—युक्त्यनुशासने, श्रीसमन्तभद्र

'हे वीर प्रभु। आपका प्रवचनतीर्थ—शासन—सर्वान्तवान् है—सामान्य, विशेष, द्रव्य, पर्याय, विधि, निषेध, एक, अनेक, आदि अशेष धर्मोंको लिये हुए है—और वह गुण-मुख्यकी कल्पनाको साथमें लिये हुए होनेसे सुव्यवस्थित है—उसमें असंगतता अथवा विरोधके लिये कोई अवकाश नहीं है—जो धर्मोंमें परस्पर अपेक्षाको नहीं मानते—उन्हें सर्वथा निरपेक्ष बतलाते हैं—उनके शासनमें किसी भी धर्मका अस्तित्व नहीं बन सकता और न पदार्थ-व्यवस्था ही ठीक बैठ सकती है। अतः आपका ही यह शासनतीर्थ सर्वदुःखोंका अन्त करनेवाला है, यही निरन्त है—किसी भी मिथ्यादर्शनके द्वारा खण्डनीय नहीं है—और यही सब प्राणियोंके अभ्युदयका कारण तथा आत्माके पूर्ण अभ्युदय

(विकास) का साधक ऐसा 'सर्वोदयतीर्थ' है। भावार्थ—आपका शासन अनेकान्तके प्रभावसे सकल दुर्नयों (परस्पर-निरपेक्ष नयों) अथवा मिथ्यादर्शनोंका अन्त (निरसन) करनेवाला है और ये दुर्नय अथवा सर्वथा एकान्तवादरूप मिथ्यादर्शन ही ससारमे अनेक शारीरिक तथा मानसिक दु खरूप आपदाओंके कारण होते है, इसलिये इन दुर्नयरूप मिथ्यादर्शनोंका अन्त करनेवाला होनेसे आपका शासन समस्त आपदाओंका अन्त करनेवाला है, अर्थात् जो लोग आपके शासनतीर्थका आश्रय लेते है—उसे पूर्णतया अपनाते है—उनके मिथ्यादर्शनादि दूर होकर समस्त दु ख मिट जाते है। और वे अपना पूर्ण अभ्युदय (उत्कर्ष एव विकास) सिद्ध करनेमें समर्थ हो जाते है।'

कामं द्विषन्नप्युपपत्तिचक्षुः समीक्षतां ते समदृष्टिरिष्टम्।
त्वयि ध्रुवं खण्डितमानश्रृङ्गो भवत्यभद्रोऽपि समन्तभद्रः॥

—युक्त्यनुशासने, श्रीसमन्तभद्र

'(हे वीर भगवन्!) आपके इष्ट-शासनसे भरपेट अथवा यथेष्ट द्वेष रखनेवाला मनुष्य भी यदि समदृष्टि (मध्यस्थवृत्ति) हुआ उपपत्तिचक्षुसे—मात्सर्यके त्यागपूर्वक युक्तिसगत समाधानकी दृष्टिसे—आपके इष्टका—शासनका—अवलोकन और परीक्षण करता है तो अवश्य ही उसका मानश्रृङ्ग खण्डित हो जाता है—सर्वथा एकान्तरूप मिथ्यामतका आग्रह छूट जाता है—और वह अभद्र अथवा मिथ्यादृष्टि होता हुआ भी सब ओरसे भद्ररूप एव सम्यग्दृष्टि बन जाता है—अथवा यों कहिये कि आपके शासनतीर्थका उपासक और अनुयायी हो जाता है।'

७

श्रीगौतम-गणधर-स्मरण

मानस्तम्भं प्रदृष्ट्वा गतनिखिलमदोऽभूच्च यो योगिराजो
वीरस्यान्ते प्रसिद्धः प्रवरगणधरस्त्यक्तसर्वप्रसङ्गः ।
श्रेयोवृष्टिं ततान शुभजन-सुखदां पापताप-प्रणाशां
वंदेऽहं गौतमं तं सकलनृप-नुतं शक्रवृन्द-प्रवन्द्यम् ॥ १ ॥
कर्मारातिं विजित्य व्रतसुभट-चयैः केवलज्ञानमाप्य
श्रीसिद्धान्तं निरूप्य नर-नृपति-गणं सम्प्रबोध्य स्ववाक्यैः।
योऽभून्मुक्तिप्रियेशोऽखिलमलरहितः शुद्धचिद्रूपधारी
श्रेयो वो नः स नित्यं ध्रुवमपि कुरुतां वाञ्छितं देहभाजाम् ॥२॥

—गौतमचरित्रे, श्रीधर्मचन्द्र

'(श्रीवीरके समवसरणमें) मानस्तम्भको देखकर जिनका सारा मद जाता रहा, जो वीरके समीप सम्पूर्ण परिग्रहका त्याग करके प्रसिद्ध योगिराज और प्रवर (अत्युत्कृष्ट) गणधर हुए, जिन्होंने पाप-तापको शान्त करनेवाली तथा भव्यजनोंको सुखकी देनेवाली कल्याणवृष्टिका विस्तार किया और जो सकलनृपोंसे स्तुत एव शक्र-समूहसे प्रवद्य थे, उन गौतमस्वामीकी मै वन्दना करता हूँ—उन्हे भक्तिभावपूर्वक प्रणाम करता हूँ ।'

'जो व्रतरूप-सुभट-समूहके द्वारा कर्मशत्रुको जीतकर, केवल-ज्ञानको प्राप्तकर, श्रीसिद्धान्तका—द्वादशाङ्ग-श्रुतका—निरूपण कर

और अपने वचनों द्वारा मनुष्यों तथा राजसमूहको संबोधन कर मुक्ति-रमाके स्वामी हुए हैं वे संपूर्ण कर्ममलसे रहित शुद्धचिद्रूपके धारी श्रीगौतमस्वामी नित्य ही तुम्हारे और हमारे ध्रुव (शाश्वत) कल्याणके कर्ता होवें तथा देहधारियोंकी मनोवांछित सिद्धिमें सहायक बनें—अर्थात् सभी जन उनका सम्यक् आराधन करके अपने इष्ट फल (मोक्ष) को प्राप्त करनेमें समर्थ होवें।'

८

श्रीभद्रबाहु-स्मरण

भद्रबाहुरग्रिमः समग्रबुद्धिसम्पदा
शुद्ध-सिद्ध-शासनं सुशब्द-बन्ध-सुन्दरम्।
इद्ध-वृत्त-सिद्धिरत्र बद्धकर्मभित्तपो-
वृद्धि-वर्द्धित-प्रकीर्तिरुदधे महर्द्धिकः॥

यो भद्रबाहुः श्रुतकेवलीनां मुनीश्वराणामिह पश्चिमोऽपि।
अपश्चिमोऽभूद्विदुषां विनेता सर्वश्रुतार्थ-प्रतिपादनेन॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० १०८

'जो सारी बुद्धि-सम्पत्तिकी प्राप्तिमें अग्रगण्य थे, निर्मल-चारित्रकी सिद्धिको लिये हुए थे, बद्धकर्मोंके भेत्ता थे—आत्मासे कर्मोंके सम्बन्धका विच्छेद करनेवाले थे—और तपकी वृद्धिसे जिनकी लोकमें महती कीर्ति बढ़ी हुई थी, उन महर्द्धिक-महाऋद्धि-धारक—भद्रबाहुने (वीरभगवानके) उस शुद्ध तथा सिद्ध शासन-

को—द्वादशाङ्गश्रुतको—उत्तमरूपसे धारण किया है, जो सुशब्दों-की रचनासे सुन्दर है।'

'श्रुतकेवली मुनीश्वरोंमे अन्तिम होते हुए भी, श्रीभद्रबाहु-स्वामी, सपूर्णश्रुतके अर्थका प्रतिपादन करनेसे, विद्वज्जनोंके प्रथम अग्रनेता हुए हैं—अपने बादके सभी विद्वानोंमें प्रधान हुए हैं।'

निरन्तरानन्त-गतात्मवृत्तिं निरस्त-दुर्बोध-तमोवितानम्।
श्रीभद्रबाहूष्णकरं विशुद्धं विनंनमीमीहितशात-सिद्ध्यै ॥

—भद्रबाहुचरित्रे, श्रीरत्ननन्दी

'जिनकी आत्मप्रवृत्ति निरन्तर ही अनन्तस्वरूप परमात्माकी ओर रही है—जिन्होंने परमात्मगुणोंकी प्राप्तिके लिये सदा ही कदम बढाया है—और मिथ्याज्ञानरूप अन्धकारके विस्तार (समूह) को दूर किया है उन निर्मलसूर्य श्रीभद्रबाहु-स्वामीको मैं, इच्छित निराकुल सुखकी सिद्धिके लिये, बहुत ही विनम्र होकर नमस्कार करता हूँ।'

६

श्रीगुणधर-स्मरण

जेणिह कसायपाहुडमणेय-णयमुज्जलं अणंतत्थं।
गाहाहि विवरियं तं गुणहर-भट्टारयं वंदे ॥

—जयधवलाया, श्रीवीरसेन:

'जिन्होंने अनेक नयोंसे युक्त, उज्ज्वल और अनन्त पदार्थोंको लिये हुए कषायप्राभृतको गाथाओंके द्वारा विवृत (व्यक्त) किया है

१२
श्रीपुष्पदन्त-स्मरण

पणमामि पुप्फदंतं दुकयंतं दुण्णयंधयार-रवि।
भग्गसिव-मग्ग-कंटयमिसि-समिइ-वइं सया दंतं॥

—धवलायां, श्रीवीरसेनः

'जो दुष्कृतों—पापोंका अन्त करनेवाले है, दुर्नयरूप अन्धकार-को दूर करनेके लिये सूर्यसमान हैं, जिन्होंने शिवमार्गके कण्टकों—मोक्षपथके बाधककारणोंको नष्ट किया है, जो ऋषियोंकी समिति (सभा) के स्वामी थे और सदा ही दमनशील थे—पंचेन्द्रियोंको अपने वशमे रखनेवाले थे, उन श्रीपुष्पदन्त आचार्यको मै प्रणाम करता हूँ।'

१३
श्रीभूतबलि-स्मरण

पणमह कय-भूय-बलिं भूयबलिं केस-वास-परिभूय-बलिं।
विणिहय-वम्मह-पसरं वड्ढाविय-विमल-णाण-वम्मह-पसरं॥

—धवलायां, श्रीवीरसेनः

'जो भूतों—सर्वप्राणियों अथवा व्यन्तर जातिके भूत नामक देवोंसे पूजे गये हैं, जिन्होंने अपने केशपाशसे—बालोंकी सुन्दर

स्थितिसे—जरासे होनेवाली शिथिलताको तिरस्कृत किया है, अब्रह्म (कामदेव) के प्रसारको नष्ट कर दिया है और निर्मलज्ञानके द्वारा ब्रह्मचर्यके प्रसारको बढ़ाया है, उन श्रीभूतबलि आचार्यको प्रणाम करो—वे सभीके प्रणाम-योग्य हैं।'

१४
श्रीकुन्दकुन्द-स्मरण

वन्द्यो विभुर्भुवि न कैरिह कौण्डकुन्दः
कुन्द-प्रभा-प्रणयि-कीर्ति-विभूषिताशः।
यश्चारुचारण-कराम्बुज-चञ्चरीक-
श्चक्रे श्रुतस्य भरते प्रयतः प्रतिष्ठाम् ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ५४

'जिनकी कुन्द-कुसुमकी प्रभाके समान शुभ्र एवं प्रिय कीर्तिसे दिशाएँ विभूषित हैं—सब दिशाओंमें जिनका उज्ज्वल और मनोमोहक यश फैला हुआ है—, जो प्रशस्त चारणोंके—चारण-ऋद्धिधारक महामुनियोंके—करकमलोंके भ्रमर हैं और जिन्होंने भरतक्षेत्रमें श्रुतकी—आगम-शास्त्रकी—प्रतिष्ठा की है, वे पवित्रात्मा स्वामी कुन्दकुन्द इस पृथ्वीपर किनसे वन्दनीय नहीं हैं?—सभीके द्वारा वन्दना किये जानेके योग्य हैं।'

तस्यान्वये भूविदिते बभूव यः पद्मनन्दि-प्रथमाभिधानः।
श्रीकोण्डकुन्दादि-मुनीश्वराख्यस्सत्संयमादुद्गत-चारणर्द्धिः॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ४०

'उन (श्रीचन्द्रगुप्त मुनिराज) के प्रसिद्ध वंशमे वे श्रीकुन्द-कुन्द मुनीश्वर हुए है जिनका पहला—दीक्षा-समयका— नाम 'पद्मनन्दी' था और जिन्हें सत्संयमके प्रसादसे चारण-ऋद्धिकी—पृथ्वीपर पैर न रखते हुए स्वेच्छासे आकाशमे चलनेकी शक्ति-की—प्राप्ति हुई थी।'

रजोभिरस्पृष्टतमत्वमन्तर्बाह्येऽपि संव्यञ्जयितुं यतीशः।
रजःपदं भूमितलं विहाय चचार मन्ये चतुरंगुलं सः॥

—श्रवणबेल्गोल शिलालेख न० १०५

'योगिराज (श्रीकुन्दकुन्द) रज स्थान पृथ्वी-तलको छोड़कर जो चार अंगुल ऊपर आकाशमे गमन करते थे उसके द्वारा, मैं समझता हूँ, वे इस बातको व्यक्त करते थे कि वे अन्तरङ्गके साथ साथ बाह्यमे भी रजसे अत्यन्त अस्पृष्ट है—अन्तरङ्गमे रागादिक-मल जिस प्रकार उनके पास नहीं फटकते उसी प्रकार बाह्यमे पृथ्वीकी धूलि भी उन्हें छू नहीं पाती।'

१५

श्रीउमास्वाति(मि)-स्मरण

तत्त्वार्थसूत्र-कर्तारमुमास्वाति-मुनीश्वरम् ।
श्रुतिकेवलिदेशीयं वन्देऽहं गुण-मन्दिरम् ॥

—नगरताल्लुक-शिलालेख न० ४६

'तत्त्वार्थसूत्रके कर्ता उमास्वाति-मुनीश्वरकी मै वन्दना करता हूँ—उनके श्रीचरणोंमे नतमस्तक होता हूँ—जो गुणोंके मन्दिर थे और करीब करीब श्रुतकेवली थे।'

श्रीमानुमास्वातिरयं यतीशस्तत्वार्थसूत्रं प्रकटीचकार ।
यन्मुक्तिमार्गाचरणोद्यतानां पाथेयमर्घ्यं भवति प्रजानाम् ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख न० १०५

'श्रीमान् उमास्वाति वे मुनीन्द्र हैं जिन्होंने उस तत्त्वार्थसूत्रको प्रकट किया है जो कि मुक्तिमार्गपर चलनेको उद्यमी प्रजाजनोंके लिये मूल्यवान पाथेय (कलेवा) के समान है—मोक्षमार्गपर चलनेके लिये कमर कसे हुओंकी आवश्यकताको पूरा करता हुआ उन्हें चलनेमे समर्थ बनानेवाला है।'

अभूदुमास्वातिमुनिः पवित्रे वंशे तदीये सकलार्थवेदी ।
सूत्रीकृतं येन जिनप्रणीतं शास्त्रार्थजातं मुनिपुङ्गवेन ॥
स प्राणिसंरक्षणसावधानो बभार योगी किल गृध्रपक्षान् ।
तदा प्रभृत्येव बुधा यमाहुराचार्यशब्दोत्तरगृध्रपिच्छम् ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख न० १०८

'उन (श्रीकुन्दकुन्दाचार्य) के पवित्र वंशमे वे उमास्वाति मुनि हुए हैं जो संपूर्ण पदार्थोंके जाननेवाले थे, मुनिपुङ्गव थे और जिन्होंने जिनदेव-प्रणीत आगमके संपूर्ण अर्थसमूहकी सूत्ररूपमे रचना की है। वे प्राणियोंकी रक्षामे बडे सावधान थे और उन्होंने एक बार पीछीके रूपमे गृध्रके परोंको धारण किया था, उस वक्तसे ही बुध-जन उनको 'गृध्रपिच्छाचार्य' कहने लगे थे।'

अतुच्छ-गुण-सम्पातं गृध्रपिच्छं नतोऽस्मि तम्।
पक्षीकुर्वन्ति यं भव्या निर्वाणायोत्पतिष्णवः॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरि.

'जिस प्रकार पक्षी ऊपर आकाशमे उडनेके लिये अपने पक्षों-परोंका सहारा लेते हैं उसी प्रकार मोक्ष-प्राप्तिके लिये उड़ने—ऊपर उठनेके इच्छुक भव्यजन जिन्हें अपना पक्ष बनाते हैं—जिनके मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र) का आश्रय लेते हैं—उन महान् गुणोंके समूह श्रीगृध्रपिच्छाचार्यको मैं नमस्कार करता हूँ।'

तत्त्वार्थसूत्र-कर्त्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र-संजातमुमास्वामि-मुनीश्वरम्॥

—तत्त्वार्थ० माहात्म्य

'जो 'तत्त्वार्थसूत्र' के कर्त्ता-रचयिता हैं, गृध्रपिच्छसे उपलक्षित हैं—गृध्रपक्षीके परोंकी पीछी धारण करनेके कारण 'गृध्रपिच्छाचार्य' नामसे नामाङ्कित हैं—और गणधरवंशमे उत्पन्न हुए हैं अथवा गणीन्द्र-श्रीकुन्दकुन्दाचार्यसे उत्पन्न हुए हैं—उनके शिष्योंमे हैं—उन श्रीउमास्वामिमुनिराजकी मैं वन्दना करता हूँ—उनके पुण्यगुणोंका स्मरण करके उनके चरणोंमे सिर झुकाता हूँ।'

१६

स्वामि-समन्तभद्र-स्मरण

१ समन्तभद्र-वन्दन—

तीर्थं सर्वपदार्थ-तत्त्व-विषय-स्याद्वाद-पुण्योदधेः
भव्यानामकलङ्क-भावकृतये प्राभावि काले कलौ ।
येनाचार्यसमन्तभद्र-यतिना तस्मै नमः सन्ततम्
(कृत्वा विव्रियते स्तवो भगवता देवागमस्तत्कृति ॥)

—देवागमभाष्ये, श्रीअकलंकदेव.

'जिन्होंने सम्पूर्ण-पदार्थ-तत्त्वोंको अपना विषय करनेवाले स्याद्वादरूपी पुण्योदधि-तीर्थको, इस कलिकालमे, भव्यजीवोंके आन्तरिक मलको दूर करनेके लिये प्रभावित किया है—उसके प्रभावको सर्वत्र व्याप्त किया है—उन आचार्य समन्तभद्रयतिको—सन्मार्गमे यत्नशील योगिराजको—बार बार नमस्कार ।'

भव्यैक-लोकनयनं परिपालयन्तम् ।
स्याद्वाद-वर्त्म परिणौमि समन्तभद्रम् ॥

—अष्टसत्या, श्रीअकलंकदेव'

'स्याद्वादमार्गके संरक्षक और भव्यजीवोंके लिये अद्वितीय-सूर्य—उनके हृदयान्धकारको दूर करके अन्त प्रकाश करने तथा सन्मार्ग दिखलानेवाले—श्रीसमन्तभद्रस्वामीको मै अभिवन्दन करता हूँ ।'

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे।
यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः ॥

—आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्य.

'जो कवियोंको—नये-नये सदर्भ रचनेवालोंको—उत्पन्न करनेवाले महान् विधाता (कवि-ब्रह्मा) हैं—, जिनकी मौलिक रचनाओंको देखकर तथा अभ्यासमे लाकर बहुतसे लोग नई-नई रचना करनेवाले कवि बन गये तथा बनते जाते है—और जिनके वचनरूपी वज्रपातसे कुमतरूपी पर्वत खण्ड-खण्ड होगये—उनका कोई विशेष अस्तित्व नहीं रहा—उन स्वामी समन्तभद्रको नमस्कार हो।'

समन्ताद्भुवने भद्रं विश्वलोकोपकारिणी।
यद्वाणी तं प्रवन्दे समन्तभद्रं कवीश्वरम् ॥

—पार्श्वनाथचरिते, भ० सकलकीर्ति.

'जिनकी वाणी—ग्रन्थादिरूप-भारती—संसारमे सब ओरसे मगलमय-कल्याणरूप है और सारी जनताका उपकार करनेवाली है उन कवियोंके ईश्वर श्रीसमन्तभद्रकी मैं सादर वन्दना करता हूँ।'

वन्दे समन्तभद्रं तं श्रुतसागरपारगम्।
भविष्यसमये योऽत्र तीर्थनाथो भविष्यति ॥

—रामपुराणे, भ० सोमसेनः

'जो श्रुतसागरके पार पहुँच गये हैं—आगमसमुद्रकी कोई बात जिनसे छिपी नहीं रही—और जो आगेको यहाँ—इसी

भूमंडलपर—तीर्थंकर होंगे, उन श्रीसमन्तभद्रको मेरा अभिवन्दन है—सादर नमस्कार है।'

समन्तभद्रनामानं मुनिं भाविजिनेश्वरम्।
स्वयम्भूस्तुतिकर्त्तारं भस्मव्याधि-विनाशनम्॥
दिगम्बरं गुणागारं प्रमाणमणिमण्डितम्।
विरागद्वेषवादादिमनेकान्तमतं नुमः॥

—मुनिसुव्रतपुराणे, कविकृष्णदास

'जो स्वयम्भूस्तोत्रके रचयिता हैं, जिन्होंने भस्मव्याधिका विनाश किया था—अपने भस्मकरोगको बड़ी युक्तिसे शान्त किया था—, जिनके वचनादिकी प्रवृत्ति रागद्वेषसे रहित होती थी, 'अनेकान्त' जिनका मत था, जो प्रमाण-मणिसे मण्डित थे—प्रमाणतारूप-मणियोंका जिनके सिरपर सेहरा बँधा हुआ था—अथवा जिनका अनेकान्तमत प्रमाणमणिसे सुशोभित है और जो भविष्यकालमें जिनेश्वर (तीर्थंकर) होनेवाले हैं, उन गुणोंके भण्डार श्रीसमन्तभद्र नामके दिगम्बर मुनिराजको हम प्रणाम करते हैं।'

२ समन्तभद्र-स्तवन—

समन्तभद्रं सद्बोधं स्तुवे वर-गुणालयम्।
निर्मलं यद्यशष्कान्तं बभूव भुवनत्रयम्॥

—जिनशतकटीकायां, श्रीनरसिंहभट्ट

'जो सद्बोध-स्वरूप थे—सम्यग्ज्ञानकी मूर्ति थे—, श्रेष्ठ गुणोंके आवास थे—उत्तमगुणोंने जिन्हें अपना आश्रयस्थान बनाया था—

और जिनकी यश कान्तिसे तीनों लोक अथवा भारतके उत्तर, दक्षिण और मध्य ये तीनों विभाग कान्तिमान थे—जिनका यशस्तेज सर्वत्र फैला हुआ था—उन स्वामी समन्तभद्रका मैं स्तवन करता हूँ।'

समन्तभद्रो भद्रार्थो भातु भारतभूषणः ।
देवागमेन येनाऽत्र व्यक्तो देवागमः कृतः ॥

—पाण्डवपुराणे, भ० शुभचन्द्र'

'जिन्होंने 'देवागम' नामक अपने प्रवचनके द्वारा देवागमको—जिनेन्द्रदेवके आगमको—इस लोकमे व्यक्त कर दिया है, वे 'भारतभूषण' और एकमात्र भद्र-प्रयोजनके धारक श्रीसमन्तभद्र लोकमे प्रकाशमान होवें—अपनी विद्या और गुणोंके आलोकसे लोगोंके हृदयान्धकारको दूर करनेमे समर्थ होवें।'

यद्भारत्याः कविः सर्वोऽभवत्संज्ञानपारगः ।
तं कवि-नायकं स्तौमि समन्तभद्र-योगिनम् ॥

—चन्द्रप्रभचरिते, कविदामोदरः

'जिनकी भारतीके प्रतापसे—ज्ञानभाण्डाररूप मौलिक कृतियोंके अभ्याससे—समस्त कविसमूह सम्यग्ज्ञानका पारगामी हो गया, उन कविनायक—नई नई मौलिक रचनाएँ करनेवालोंके शिरोमणि—योगी श्रीसमन्तभद्रको मै अपनी स्तुतिका विषय बनाता हूँ—वे मेरे स्तुत्य हैं, पूज्य है।'

समन्तभद्रस्संस्तुत्यः कस्य न स्यान्मुनीश्वरः ।
वाराणसीश्वरस्याग्रे निर्जिता येन विद्विषः ॥

—तिरुमकूडलुनरसीपुर-शिलालेख न० १०५

'जिन्होंने वाराणसी (बनारस) के राजाके सामने विद्वेषियों-को—अनेकान्तात्मक-जैनशासनसे द्वेष रखनेवाले सर्वथा एकान्त-वादियोंको—पराजित कर दिया था, वे समन्तभद्र मुनीश्वर किनके स्तुतिपात्र नहीं हैं ?—सभीके द्वारा भले प्रकार स्तुति किये जानेके योग्य हैं।'

३ समन्तभद्र-अभिनन्दन—

येनाशेष-कुनीति-वृत्ति-सरितः प्रेक्षावतां शोषिताः
यद्वाचोऽप्यकलंकनीति-रुचिरास्तत्त्वार्थ-सार्थद्युतः ।
स श्रीस्वामिसमन्तभद्र-यतिभृद्भूयाद्विभुर्भानुमान्
विद्याऽऽनन्द-घनप्रदोऽनघधियां स्याद्वादमार्गाग्रणीः ॥

—अष्टसहस्रया, श्रीविद्यानन्द

'जिन्होंने परीक्षावानोंके लिये सम्पूर्ण कुनीति और कुवृत्ति-रूप-नदियोंको सुखा दिया है, जिनके वचन निर्दोषनीति—स्याद्वादन्यायको लिये हुए होनेके कारण मनोहर हैं तथा तत्त्वार्थ-समूहके द्योतक हैं वे योगियोंके नायक, स्यद्वादमार्गके नेता, विभु—सामर्थ्यवान—और भानुमान्—सूर्यके समान देदीप्यमान अथवा तेजस्वी—श्रीसमन्तभद्रस्वामी कलुषित-आशय-रहित प्राणियों-को—सज्जनों अथवा सुधीजनोंको—विद्या और आनन्द-घनके प्रदान करनेवाले होवें—उनके प्रसादसे (प्रसन्नतापूर्वक उन्हें चित्तमें धारण करनेसे) सबोंके हृदयमें शुद्धज्ञान और आनन्दकी वर्षा होवे।'

४ समन्तभद्र-कीर्तन—

कवीनां गमकानां च वादीनां वाग्मिनामपि ।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥

—आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्यः

'श्रीसमन्तभद्रका यश कवियोंके—नये नये सन्दर्भ अथवा नई नई मौलिक रचनाएँ तय्यार करनेमें समर्थ विद्वानोंके—, गमकोंके—दूसरे विद्वानोंकी कृतियोंके मर्म एवं रहस्यको समझनेवाले तथा दूसरोंको समझानेमें प्रवीण व्यक्तियोंके—, विजयकी ओर वचनप्रवृत्ति रखनेवाले वादियोंके, और अपनी वाक्पटुता तथा शब्द-चातुरीसे दूसरोंको रंजायमान करने अथवा अपना प्रेमी बना लेनेमें निपुण ऐसे वाग्मियोंके मस्तकपर चूडामणिकी तरह सुशोभित है। अर्थात् स्वामी समन्तभद्रमें कवित्व, गमकत्व, वादित्व और वाग्मित्व नामके चार गुण असाधारण-कोटिकी योग्यताको लिये हुए थे—ये चारों ही शक्तियाँ उनमें खास तौरसे विकासको प्राप्त हुई थीं—और इनके कारण उनका निर्मल यश दूर दूर तक चारों ओर फैल गया था। उस वक्त जितने वादी, वाग्मी, कवि और गमक थे उन सब पर उनके यशकी छाया पड़ी हुई थी—समन्तभद्रका यश चूडामणिके तुल्य सर्वोपरि था—और वह बादको भी बड़े बड़े विद्वानों तथा महान् आचार्योंके द्वारा शिरोधार्य किया गया है।'

समन्तभद्रोऽजनि भद्रमूर्तिस्ततः प्रणेता जिनशासनस्य ।
यदीय-वाग्वज्र-कठोरपातश्चूर्णीचकार प्रतिवादि-शैलान् ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० १०८

'(वलाकपिच्छाचार्यके बाद) श्रीसमन्तभद्र 'जिनशासनके प्रणेता' हुए हैं, वे भद्रमूर्ति थे और उनके वचनरूपी वज्रके कठोर-पातसे प्रतिवादी-रूपी पर्वत चूर-चूर हो गये थे—कोई भी प्रतिवादी उनके सामने नहीं ठहरता था।'

समन्तभद्रादिकवीन्द्रभास्वतां स्फुरन्ति यत्राऽमलसूक्तिरश्मयः।
व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यतां न तत्र किं ज्ञानलवोद्धता जनाः॥

—ज्ञानार्णवे, श्रीशुभचन्द्राचार्य

'श्रीसमन्तभद्र–जैसे कवीन्द्र-सूर्योंकी जहाँ निर्मल सूक्ति रूप-किरणें स्फुरायमान होरही हैं वहाँ वे लोग खद्योत–जुगनूकी तरह हँसीको ही प्राप्त होते हैं जो थोडेसे ज्ञानको पाकर उद्धत हैं—कविता (नूतन सन्दर्भकी रचना) करके गर्व करने लगते हैं।'

५ समन्तभद्र-प्रवचन—

नित्याद्येकान्तगर्तप्रपतनविवशान्प्राणिनोऽनर्थसार्था-
दुद्धर्तुं नेतुमुच्चैः पदममलमलं मंगलानामलंघ्यम्।
स्याद्वाद-न्यायवर्त्म प्रथयदवितथार्थं वचः स्वामिनोऽदः
प्रेक्षातत्त्वात्प्रवृत्तं जयतु विघटिताऽशेषमिथ्याप्रवादम्॥

—अष्टसहस्र्या, विद्यानन्दाचार्य

'स्वामी समन्तभद्रका वह निर्दोष प्रवचन जयवन्त हो—अपने प्रभावसे लोकहृदयोंको प्रभावित करे— जो नित्यादि एकान्त गर्तोंमे—वस्तु कूटस्थवत् सर्वथा नित्य ही है अथवा क्षण-क्षणमे निरन्वय विनाशरूप सर्वथा क्षणिक ही है, इस प्रकारकी मान्यतारूपी एकान्त खड्डोंमे—पडनेके लिये विवश हुए प्राणियोंको

अनर्थ-समूहसे निकालकर मंगलमय उच्चपदको प्राप्त करानेके लिये समर्थ है, स्याद्वाद-न्यायके मार्गको प्रख्यात करनेवाला है, सत्यार्थ है, अलंघ्य है, परीक्षापूर्वक प्रवृत्त हुआ है अथवा प्रेक्षावान्—समीक्ष्यकारी—आचार्यमहोदयके द्वारा जिसकी प्रवृत्ति हुई है और जिसने सम्पूर्ण मिथ्याप्रवादको विघटित—तितर-बितर—कर दिया है।'

विस्तीर्ण-दुर्नयमय-प्रबलान्धकार-
दुर्बोध-तत्त्वमिह वस्तु हितावबद्धम्।
व्यक्तीकृतं भवतु नस्सुचिरं समन्तात्
सामन्तभद्र-वचन-स्फुट-रत्नदीपैः ॥

—न्यायविनिश्चयालंकारे, वादिराजसूरिः

'फैले हुए दुर्नयरूपी प्रबल अन्धकारके कारण जिसका तत्त्व लोकमें दुर्बोध हो रहा है—ठीक समझमें नहीं आता—वह हितकारी वस्तु—प्रयोजनभूत-जीवादि-पदार्थमाला—श्रीसमन्तभद्रके वचनरूपी देदीप्यमान रत्नदीपकोंके द्वारा हमें सब ओरसे चिरकाल तक स्पष्ट प्रतिभासित होवे—अर्थात् स्वामी समन्तभद्रका प्रवचन उस महाजाज्वल्यमान रत्नसमूहके समान है जिसका प्रकाश अप्रतिहत होता है और जो संसारमें फैले हुए निरपेक्ष नयरूपी महामिथ्यान्धकारको दूर करके वस्तुतत्त्वको स्पष्ट करनेमें समर्थ है, उसे प्राप्त करके हम अपना अज्ञान दूर करें।'

स्यात्कार-मुद्रित-समस्तपदार्थ-पूर्णं
त्रैलोक्य-हर्म्यमखिलं स खलु व्यनक्ति।

दुर्वादुकोक्तितमसा पिहितान्तरालं
सामन्तभद्र-वचन-स्फुट-रत्नदीपः ॥

—श्रवणवेल्गोल-शिलाले० नं० १०५

'श्रीसमन्तभद्रका प्रवचनरूप देदीप्यमान रत्नदीप उस त्रैलोक्यरूप महलको निश्चितरूपसे प्रकाशित करता है जो स्यात्कारमुद्राको लिये हुए समस्तपदार्थोंसे पूर्ण है और जिसके अन्तराल दुर्वादियोंकी उक्तिरूपी अन्धकारसे आच्छादित हैं।'

जीवसिद्धि-विधायीह कृतयुक्त्यनुशासनम् ।
वचः समन्तभद्रस्य वीरस्येव विजृम्भते ॥

—हरिवंशपुराणे, श्रीजिनसेनसूरिः

'जीवसिद्धिका विधायक और युक्तियों द्वारा अथवा युक्तियों का अनुशासन करनेवाला—अर्थात 'जीवसिद्धि' और 'युक्त्यनुशासन' जैसे ग्रन्थोंके प्रणयनरूप—समन्तभद्रका प्रवचन श्रीवीरके प्रवचनकी तरह प्रकाशमान है—अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर भगवान्के बीजभूत वचनोंके समकक्ष है और प्रभावादिकमे भी उन्हींके तुल्य है।'

श्रीमत्समन्तभद्रस्य देवस्यापि वचोऽनघम् ।
प्राणिनां दुर्लभं यद्वन्मानुषत्वं तथा पुनः ॥

—सिद्धान्तसारसंग्रहे, श्रीनरेन्द्रसेन'

'श्रीसमन्तभद्रदेवका निर्दोष प्रवचन प्राणियोंके लिये ऐसा ही दुर्लभ है जैसा कि मनुष्यत्वका पाना—अर्थात् अनादिकालसे ससारमे परिभ्रमण करते हुए प्राणियोंको जिस प्रकार मनुष्यभवका मिलना दुर्लभ होता है उसी प्रकार समन्तभद्रदेवके प्रवचन-

का लाभ होना भी दुर्लभ है, जिन्हें उसकी प्राप्ति होती है वे निःसन्देह सौभाग्यशाली हैं।'

६ समन्तभद्र-प्रणयन—

समन्तभद्रादिमहाकवीश्वरैः कृतप्रबन्धोज्वल-सत्सरोवरे।
लसद्रसालङ्कृति-नीर-पङ्कजे सरस्वती क्रीडति भाव-बन्धुरे॥

—शृङ्गारचन्द्रिकाया, श्रीविजयवर्णी

'महाकवीश्वर श्रीसमन्तभद्रके द्वारा प्रणयन किये गये प्रबन्ध-समूह (वाङ्मय) रूप उस उज्वल सत्सरोवरमें, जो रसरूप जल तथा अलङ्काररूप कमलोंसे सुशोभित है और जहाँ भावरूप हंस विचरते हैं, सरस्वती क्रीडा करती है—अर्थात् स्वामी समन्तभद्रके ग्रन्थ रस तथा अलङ्कारोंसे सुसज्जित हैं, सद्भावोंसे परिपूर्ण हैं और सरस्वती देवीके क्रीडास्थल हैं—विद्यादेवी उनमें विना किसी रोक-टोकके स्वच्छन्द विचरती है अर्थात् वे उसके उपाश्रय हैं। इसीसे महाकवि श्रीवादीभसिंहसूरिने, गद्य-चिन्तामणिमें समन्तभद्रका "सरस्वती-स्वैर-विहारभूमय" विशेषण-के साथ स्मरण किया है।'

स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य नो विस्मयावहम्।
देवागमेन सर्वज्ञो येनाऽद्यापि प्रदर्श्यते॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरिः

'उन स्वामी (समन्तभद्र) का चरित्र किसके लिये विस्मय-कारक—आश्चर्यजनक—नहीं है, जिन्होंने 'देवागम' नामके अपने प्रवचन-द्वारा आज भी सर्वज्ञको प्रदर्शित कर रक्खा है? सभीके

लिये विस्मयकारक है—निःसन्देह समन्तभद्रका 'देवागम' नामका प्रवचन जैनसाहित्यमे एक अद्वितीय एव बेजोड रचना है और उसके द्वारा सर्वज्ञ ही नहीं किन्तु जिनेन्द्रदेवका आगम भी लोकमे भले प्रकार व्यक्त होरहा है। इसीसे शुभचन्द्राचार्यने, अपने पांडवपुराणमे समन्तभद्रका स्मरण करते हुए, उन्हें "देवागमेन येनाऽत्र व्यक्तो देवागमः कृतः" विशेषणके साथ उल्लेखित किया है।'

त्यागी स एव योगीन्द्रो येनाऽक्षय्यसुखावहः।
अर्थिने भव्यसार्थाय दिष्टो रत्नकरण्डकः॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरि.

'वे ही योगीन्द्र—समन्तभद्र सच्चे त्यागी (दाता) हुए हैं, जिन्होंने सुखार्थी भव्यसमूहके लिये अक्षयसुखका कारण धर्मरत्नोंका पिटारा—'रत्नकरण्डक' नामका धर्मशास्त्र—दान किया है।'

प्रमाण-नय-निर्णीत-वस्तुतत्त्वमबाधितम्।
जीयात्समन्तभद्रस्य स्तोत्रं युक्त्यनुशासनम्॥

—युक्त्यनुशासन-टीकाया, श्रीविद्यानन्द.

'श्रीसमन्तभद्रका 'युक्त्यनुशासन' नामका स्तोत्र जयवन्त हो, जो प्रमाण और नयके द्वारा वस्तुतत्त्वके निर्णयको लिये हुए है और अबाधित है—जिसके निर्णयमे प्रतिवादियोंके द्वारा कोई बाधा नहीं दी जा सकती।'

यस्य च सद्गुणाधारा कृतिरेषा सुपद्मिनी।
जिनशतकनामेति योगिनामपि दुष्करा॥

स्तुतिविद्यां समाश्रित्य कस्य न क्रमते मतिः ।
तद्वृत्तिं येन जाड्ये तु कुरुते वसुनन्द्यपि ॥

—जिनशतकटीकाया, श्रीनरसिंहः

'स्वामी समन्तभद्रकी 'जिनशतक' (स्तुतिविद्या) नामकी रचना, जो कि योगियोंके लिये भी दुष्कर है, सद्गुणोंकी आधार-भूत सुन्दर कमलिनीके समान है—उसके रचना-कौशल, रूप-सौन्दर्य, सौरभ-माधुर्य और भाव-वैचित्र्यको देखते तथा अनुभव करते ही बनता है। उस स्तुति-विद्याका भले प्रकार आश्रय पाकर किसकी बुद्धि स्फूर्तिको प्राप्त नहीं होती ? जब कि जडबुद्धि होते हुए भी वसुनन्दी स्तुतिविद्याके समाश्रयणके प्रभावसे उसकी वृत्ति (टीका) करनेमे समर्थ होता है ।'

यो निःशेष-जिनोक्त-धर्म-विषयः श्रीगौतमाद्यैः* कृतः ।
सूक्तार्थैरमलैः स्तवोऽयमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः ।
(तद्व्याख्यानमदो यथावगमत किञ्चित्कृत लेशत)
स्थेयांश्चन्द्रदिवाकरावधि बुधप्रह्लादचेतस्यलम् ॥

—स्वयम्भूस्तोत्रटीकाया, श्रीप्रभाचन्द्रः

'श्री समन्तभद्रका 'स्वयम्भूस्तोत्र', जो कि सूक्तरूपमे (भले प्रकार) अर्थका प्रतिपादन करनेवाले निर्दोष, स्वल्प (अल्पाक्षर) एव प्रसन्न (प्रसादगुणविशिष्ट) पदोंके द्वारा रचा गया है और

---

* यहाँ 'श्रीगौतमाद्यै' पदका प्रयोग इस आशयको लिये हुए है कि श्रीगौतमस्वामीक स्तोत्रको शुरूमे रखकर दो तीन स्तोत्रो की जो एक साथ टीका की गई है उन सभी स्तोत्रासे इसका सम्बन्ध है और जिनमे यह पद्य स्वयम्भूस्तोत्रकी टीकाके अन्तमे दिया है ।

सम्पूर्ण जिनोक्तधर्मको अपना विषय किये हुए है, एक अद्वितीय स्तोत्र है, वह बुधजनोंके प्रसन्नचित्तमे सूर्य-चन्द्रमाकी स्थिति-पर्यन्त स्थित रहे ।'

तत्त्वार्थसूत्र-व्याख्यान-गन्धहस्ति-प्रवर्तकः ।
स्वामी समन्तभद्रोऽभूद्देवागमनिदेशकः ॥

—विक्रान्तकौरवे, श्रीहस्तिमल्ल'

'स्वामी समन्तभद्र तत्त्वार्थसूत्रके 'गन्धहस्ति' नामक व्याख्यान-के प्रवर्तक (विधायक) हुए है और साथ ही देवागमके—'देवागम' नामक ग्रन्थके निर्देशक (प्ररूपक) भी हुए है ।'

७ समन्तभद्र-वाणी—

प्रज्ञाधीश-प्रपूज्योज्ज्वलगुणनिकरोद्भूतसत्कीर्तिसम्पद्-
विद्यानन्दोदयायाऽनवरतमखिलक्लेशनिर्णाशनाय ।
स्ताद्गौः सामन्तभद्री दिनकररुचिजित्सप्तभंगीविधीद्धा
भावाद्येकान्तचेतस्तिमिरनिरसनी वोऽकलङ्कप्रकाशा ॥

—अष्टसहस्र्या, श्रीविद्यानन्दाचार्य

'श्रीस्वामीसमन्तभद्रकी वाणी—वाग्देवी—प्रज्ञाधीशों—बडे बडे बुद्धिमानोंके द्वारा प्रपूजित है, उज्ज्वल गुणोंके समूहसे उत्पन्न हुई सत्कीर्तिरूप सम्पत्तिसे युक्त है, अपने तेजसे सूर्यके तेजको जीतनेवाली सप्तभगी विधिके द्वारा प्रदीप्त है, निर्मल प्रकाशको लिये हुए है और भाव-अभाव आदिके एकान्तपक्षरूपी हृदयान्धकारको दूर करनेवाली है, वह वाणी तुम्हारी विद्या (केवलज्ञान) और आनन्द (अनन्त सुख) के उदयके लिये

निरन्तर कारणीभूत होवे और उसके प्रसादसे तुम्हारे सम्पूर्ण दुःख-क्लेश नाशको प्राप्त हो जावें।'

अद्वैताद्याग्रहोग्रग्रह-गहन-विपन्निग्रहेऽलंध्यवीर्याः
स्यात्कारामोघमंत्रप्रणयनविधयः शुद्धसद्ध्यानधीराः।
धन्यानामादधाना धृतिमधिवसतां मण्डलं जैनमग्र्यम्
वाचः सामन्तभद्र्यो विदधतु विविधां सिद्धिमुद्भूतमुद्राः॥

—अष्टसहस्रया, श्रीविद्यानन्दः

'स्वामी समन्तभद्रकी वाणी—वाकृतिरूप-सरस्वती—अद्वैत-पृथकत्व आदिके एकान्त आग्रहरूपी उग्रग्रह-जन्य गहन विपत्तिको दूर करनेके लिये अलंध्यवीर्या है—अप्रतिहत-शक्ति है—, स्यात्काररूपी अमोघ मंत्रका प्रणयन करनेवाली है, शुद्ध सद्ध्यान-धीरा है—निर्दोष परीक्षा अथवा सच्ची जाँच-पड़तालके द्वारा स्थिर है—, उद्भूतमुद्रा है—ऊँचे आनन्दको देनेवाली है—, और प्रधान जैनमण्डलके अधिवासी—जैनधर्मके अनुयाता—भव्य पुरुषोंके धैर्यके लिये अवलम्बन-स्वरूप है—जैनधर्ममें उनकी स्थिरताको दृढ़ करनेवाली है—, वह वाणी लोकमें नाना प्रकारकी सिद्धिका विधान करे—उसका आश्रय पाकर लौकिक जन अपना हित सिद्ध करनेमें समर्थ होवें।'

अपेक्षैकान्तादि-प्रबल-गरलोद्रेक-दलिनी
प्रवृद्धाऽनेकान्ताऽमृतरस-निषेकाऽनवरतम्।
प्रवृत्ता वागेषा सकल-विकलादेश-वशतः
समन्ताद्भद्रं वो दिशतु मुनिपस्याऽमलमतेः॥

—अष्टसहस्रया, श्रीविद्यानन्दः

'निर्मलमति श्रीसमन्तभद्र मुनिराजकी वह वाणी, जो अपेक्षा-अनपेक्षा आदिके एकान्तरूप प्रबल गरल (विष) के उद्रेकको दलनेवाली है, निरन्तर अनेकान्तरूपी अमृतरसके सिंचनसे खूब वृद्धिको प्राप्त है और सकलादेशों—प्रमाणों—तथा विकलादेशों—नयों—के आधीन प्रवृत्त हुई है, सब ओरसे तुम्हारे मंगल एवं कल्याणको प्रदान करनेवाली होवे—उसकी एकनिष्ठापूर्वक उपासना एवं तद्रूप आचरणसे तुम्हारे सब तरफ भद्रतामय मंगलका प्रसार होवे।'

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता।
न हारयष्टिः परमेव दुर्लभा समन्तभद्रादिभवा च भारती॥

—चन्द्रप्रभचरिते, श्रीवीरनन्द्याचार्य

'गुणोंसे—सूतके धागोंसे गूँथी—हुई, निर्मल गोल मोतियोंसे युक्त और उत्तम पुरुषोंके कण्ठका विभूषण बनी हुई हारयष्टिको—मोतियोंकी मालाको—प्राप्त कर लेना उतना कठिन नहीं है जितना कठिन कि समन्तभद्रकी भारती (वाणी) को पा लेना—उसे खूब समझकर हृदयङ्गम कर लेना है, जो कि सद्गुणोंको लिये हुए है, निर्मल वृत्त (वृत्तान्त, चरित्र, आचार, विधान तथा छन्द) रूपी मुक्ताफलोंसे युक्त है और बड़े बड़े आचार्यों तथा विद्वानोंने जिसे अपने कण्ठका आभूषण बनाया है—वे नित्य ही उसका उच्चारण तथा पाठ करनेमें अपना गौरव और अहोभाग्य समझते रहे हैं। अर्थात् स्वामी समन्तभद्रकी वाणी परम दुर्लभ है—उनके सातिशय वचनोंका लाभ बड़े ही भाग्य तथा परिश्रमसे होता है।'

८ समन्तभद्र-भारती—

सास्मरीमि तोष्टवीमि नंनमीमि भारतीं
तंतनीमि पापठीमि बंभणीमि तेमिताम्।
देवराज-नागराज-मर्त्यराजपूजितां
श्रीसमन्तभद्र-वाद-भासुरात्मगोचराम् ॥१॥

'श्रीसमन्तभद्रके वादसे—कथनोपकथनसे—जिसका आत्म-विषय देदीप्यमान है और जो देवेन्द्रों, नागेन्द्रों तथा नरेन्द्रोंसे पूजित है, उस सरसा भारतीका—समन्तभद्रस्वामीकी सरस्वती-का—मैं बड़े आदरके साथ बार बार स्मरण करता हूँ, स्तवन करता हूँ, वन्दन करता हूँ, विस्तार करता हूँ, पाठ करता हूँ और व्याख्यान करता हूँ।'

मातृ-मान-मेय-सिद्धि-वस्तुगोचरां स्तुवे
सप्तभङ्ग-सप्तनीति-गम्यतत्त्वगोचराम्।
मोक्षमार्ग-तद्विपक्ष-भूरिधर्मगोचरा-
माप्ततत्त्वगोचरां समन्तभद्रभारतीम् ॥ २ ॥

'प्रमाता (ज्ञाता) की सिद्धि, प्रमाण (सम्यग्ज्ञान) की सिद्धि और प्रमेय (ज्ञेय) की सिद्धि ये वस्तुएँ जिसकी विषय हैं, जो सप्त भङ्ग और सप्तनयसे जानने योग्य तत्त्वोंको अपना विषय किये हुए है—जिसमें सप्तभंगों तथा सप्तनयोंके द्वारा जीवादि-तत्त्वोंका परिज्ञान कराया गया है—जो मोक्षमार्ग और उसके विपरीत संसार-मार्ग-सम्बन्धी प्रचुर धर्मोंके विवेचनको लिये हुए है और

आप्ततत्त्वविवेचन—आप्तमीमांसा—भी जिसका विषय है, उस समन्तभद्रभारतीका मैं स्तोत्र करता हूँ।'

सूरिसूक्तिवन्दितामुपेयतत्त्वभाषिणीं
चारुकीर्तिभासुरामुपायतत्त्वसाधनीम्।
पूर्वपक्षखण्डनप्रचण्डवाग्विलासिनीं
संस्तुवे जगद्धितां समन्तभद्रभारतीम् ॥ ३ ॥

'जो आचार्योंकी सूक्तियोंद्वारा वन्दित है—बड़े बड़े आचार्योंने अपनी प्रभावशालिनी वचनावली-द्वारा जिसकी पूजा-वन्दना की है—, जो उपेयतत्त्वको बतलानेवाली है, उपायतत्त्वकी साधन-स्वरूपा है, पूर्वपक्षका खण्डन करनेके लिये प्रचण्ड वाग्विलासको लिये हुए है—लीलामात्रमें प्रवादियोंके असत्पक्षका खण्डन कर देनेमें प्रवीण है—और जगतके लिये हितरूप है, उस समन्तभद्र-भारतीका मैं स्तवन करता हूँ।'

पात्रकेसरि-प्रभावसिद्धि-कारिणीं स्तुवे
भाष्यकार-पोषितामलंकृतां मुनीश्वरैः।
गृध्रपिच्छ-भाषित-प्रकृष्ट-मंगलार्थिकां
सिद्धि-सौख्य-साधनीं समन्तभद्रभारतीम् ॥ ४ ॥

'पात्रकेसरीपर प्रभावकी सिद्धिमें जो कारणीभूत हुई—जिसके प्रभावसे पात्रकेसरी-जैसे महान् विद्वान जैनधर्ममें दीक्षित होकर बड़े प्रभावशाली आचार्य बने—, जो भाष्यकार—अकलंकदेव—द्वारा पुष्ट हुई, मुनीश्वरों—विद्यानन्द-जैसे मुनिराजों—द्वारा अलंकृत की गई, गृद्धपिच्छाचार्य (उमास्वाति) के कहे हुए

उत्कृष्ट मगलके अर्थको लिये हुए है—उसके गम्भीर आशयका प्रतिपादन करनेवाली है—और सिद्धिके—स्वात्मोपलब्धिके—सौख्यको सिद्धि करनेवाली है, उस समन्तभद्र-भारतीको—समन्तभद्रकी आप्तमीमासादिरूप-कृति-मालाको—मै अपनी स्तुतिका विषय बनाता हूँ—उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करता हूँ।'

इन्द्रभूति-भापित-प्रमेयजाल-गोचरां
वर्द्धमानदेव-बोध-बुद्ध-चिद्विलासिनीम् ।
यौग-सौगतादि-गर्व-पर्वताशनि स्तुवे
क्षीरवार्धि-सन्निभां समन्तभद्रभारतीम् ॥ ५ ॥

'इन्द्रभूति (गौतम गणधर) का कहा हुआ प्रमेय-समूह जिसका विषय है, जो श्रीवर्द्धमानदेवके बोधसे प्रबुद्ध हुए चैतन्यके विलासको लिये हुए है, यौग तथा बौद्धादि-मतावलम्बियोंके गर्वरूपी पर्वतके लिए वज्रके समान है और क्षीरसागरके समान उज्ज्वल तथा पवित्र है, उस समन्तभद्रभारतीका मै कीर्तन करता हूँ—उसकी प्रशसामे खुला गान करता हूँ।'

मान-नीति-वाक्यसिद्ध-वस्तुधर्म-गोचरां
मानित-प्रभाव-सिद्धसिद्धि-सिद्धसाधनीम् ।
घोर-भूरि-दुःख-वार्धि-तारण-क्षमामिमां
चारु-चेतसा स्तुवे समन्तभद्रभारतीम् ॥ ६ ॥

'प्रमाण, नय तथा आगमके द्वारा सिद्ध हुए वस्तु—धर्म जिसके विषय है—जिसमे प्रमाण, नय तथा आगमके द्वारा वस्तु-धर्मोंको सिद्ध किया गया है—, मानित (मान्य) प्रभाववाली

प्रसिद्ध सिद्धि—स्वात्मोपलब्धि—के लिए जो सिद्धभावनी है—अमोघ उपायस्वरूपा है—और घोर तथा प्रचुर दुःखोंके समुद्र-से पार तारनेके लिये समर्थ है, उस समन्तभद्रभारती की मैं शुद्ध हृदयसे प्रशंसा करता हूँ।'

सान्त-साद्यनाद्यनन्त-मध्ययुक्त-मध्यमां
शून्य-भाव-सर्ववेदि-तत्त्व-सिद्धि-साधनीम्।
हेत्वहेतुवादसिद्ध-वाक्यजाल-भासुरां
मोक्षसिद्धये स्तुवे समन्तभद्रभारतीम् ॥ ७ ॥

'सादि-सान्त, अनादिसान्त, सादि-अनन्त और अनादि-अनन्त-रूपसे द्रव्य-पर्यायोंका कथन करनेमें जो मध्यस्था है—इनका सर्वथा एकान्त स्वीकार नहीं करती—, शून्य (अभाव) तत्त्व, भावतत्त्व और सर्वज्ञतत्त्वकी सिद्धिमें जो साधनीभूत है और हेतुवाद तथा अहेतुवाद (आगम) से सिद्ध हुए वाक्यसमूहसे प्रकाशमान है—अर्थात् जो युक्ति और आगम-द्वारा सिद्ध हुए वाक्योंसे देदीप्यमान है, उस समन्तभद्रभारतीकी मैं, मोक्षकी सिद्धिके लिए, स्तुति करता हूँ।'

व्यापकद्वयाप्तमार्ग-तत्त्वयुग्म-गोचरां
पापहारि-वाग्विलासि-भूषणांशुकां स्तुवे।
श्रीकरीं च धीकरीं च सर्वसौख्य-दायिनीं
नागराज-पूजितां समन्तभद्रभारतीम् ॥ ८ ॥

—कविनागराज-विरचित-सं० भारतीस्तोत्रम्

व्यापक-व्याप्यका—गुण-गुणीका—ठीक प्रतिपादन करनेवाले

आप्तमार्गके दो तत्त्व—हेयतत्त्व, उपादेयतत्त्व अथवा उपेयतत्त्व और उपायतत्त्व—जिसके विषय हैं, जो पापहरणरूप आभूषण और वाग्विलासरूप वस्त्रको धारण करनेवाली है, साथ ही, श्री-साधिका, बुद्धि-वर्धिका और सर्वसुख-दायिका है, उस नागराज-पूजित समन्तभद्रभारतीकी मैं स्तुति करता हूँ।'

६ समन्तभद्र-शासन—

लक्ष्मीभृत्परमं निरुक्तिनिरतं निर्वाणसौख्यप्रदं
कुज्ञानातपवारणाय विधृतं छत्रं यथा भासुरम्।
संज्ञानैर्नययुक्तिमौक्तिकफलैः संशोभमानं परं
वन्दे तद्धतकालदोपममलं सामन्तभद्रं मतम्॥

—देवागमवृत्तौ, श्रीवसुनन्दिसूरिः

'श्रीसमन्तभद्रके उस निर्दोष मतकी—मैं वन्दना करता हूँ—उसे श्रद्धा और गुणज्ञता-पूर्वक प्रणामाञ्जलि अर्पण करता हूँ—जो श्रीसम्पन्न है, उत्कृष्ट है, निरुक्ति-परायण है—व्युत्पत्ति-विहीन शब्दोंके प्रयोगसे रहित है—, मिथ्याज्ञानरूपी आतापको मिटानेके लिये विधिपूर्वक धारण किये हुए देदीप्यमान छत्रके समान है, सम्यग्ज्ञानों-सुनयों तथा सुयुक्तियोंरूपी मुक्ताफलोंसे परम सुशोभित है, निर्वाण-सौख्यका प्रदाता है और जिसने काल-दोपको ही नष्ट कर दिया था—अर्थात् स्वामी समन्तभद्रमुनिके प्रभावशाली शासनकालमें यह मालूम नहीं होता था कि आजकल कलिकाल बीत रहा है।'

१० समन्तभद्र-माहात्म्य—

वन्द्यो भस्मक-भस्मसात्कृतिपटुः पद्मावतीदेवता-
दत्तोदात्तपद-स्वमंत्रवचन-व्याहूत-चन्द्रप्रभः ।
आचार्यस्स समन्तभद्रगणभृद्येनेह काले कलौ
जैनं वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्रं समन्तान्मुहुः ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ५४ (६७)

'मुनिसङ्घके नायक वे आचार्य समन्तभद्र वन्दना किये जानेके योग्य हैं जो अपनी 'भस्मक' व्याधिको भस्मीभूत करनेमे—बडी युक्तिके साथ निर्मूल करनेमे—प्रवीण हुए हैं, पद्मावती नामकी दिव्यशक्तिके प्रभावसे जिन्हें उच्चपदकी प्राप्ति हुई थी, जिन्होंने अपने मंत्ररूप वचनबलसे—योगसामर्थ्यसे—बिम्बरूपमे चन्द्र-प्रभ भगवान्को बुला लिया था—अर्थात् चन्द्रप्रभ-बिम्बका आक-र्षण (आविर्भाव) किया था—और जिनके द्वारा सर्वहितकारी जैनमार्ग (स्याद्वादमार्ग) इस कलिकालमे पुन सब ओरसे भद्ररूप हुआ है—उसका प्रभाव सर्वत्र व्याप्त होनेसे वह सबका हित करनेवाला और सबका प्रेमपात्र बना है ।'

* श्रीमूलसङ्घ-व्योम्नेन्दुर्भारते भावितीर्थकृद् ।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पदर्द्धिकः ॥

—विक्रान्तकौरवे, श्रीहस्तिमल्ल'

---

* यह पद्य कवि अय्यपार्यके 'जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय'में भी प्राय ज्योंका त्यों पाया जाता है। उसमे चौथा चरण 'जीयात्प्राप्तपदर्द्धिक' दिया है।

'श्रीमूलसङ्घरूपी आकाशमे जो चन्द्रमाके समान हुए हैं, भारतदेशमे आगेको तीर्थंकर होनेवाले है और जिन्हें चारण ऋद्धिकी प्राप्ति थी—तपके प्रभावसे आकाशमे चलनेकी ऐसी शक्ति उपलब्ध हो गई थी जिसके कारण वे, दूसरे जीवोंको बाधा न पहुँचाते हुए, शीघ्रताके साथ सैकडों कोस चले जाते थे—वे 'समन्तभद्र' नामके मुनिराज जयवन्त हों—उनका प्रभाव स्थायी रूपसे हमारे हृदयपर अङ्कित होवे।'

कुवादिनः स्वकान्तानां निकटे परुषोक्तयः।
समन्तभद्र-यत्यग्रे पाहि पाहीति सूक्तयः॥

—अलङ्कारचिन्तामणे, श्रीअजितसेनाचार्य.

'(समन्तभद्र-कालमे) प्राय. कुवादीजन अपनी स्त्रियोंके सामने तो कठोर भाषण किया करते थे—उन्हे अपनी गर्वोक्तियाँ अथवा अपनी बहादुरीके गीत सुनाते थे—परन्तु जब योगी समन्तभद्र के सामने आते थे तो मधुरभाषी बन जाते थे और उन्हें 'पाहि पाहि'—रक्षा करो रक्षा करो, अथवा आप ही हमारे रक्षक है—ऐसे सुन्दर मृदु-वचन ही कहते बनता था। यह सब स्वामीसमन्तभद्रके असाधारण व्यक्तित्वका प्रभाव था।'

श्रीमत्समन्तभद्राख्ये महावादिनि चागते।
कुवादिनोऽलिखन्भूमिमंगुष्ठैरानताननाः॥

—अलकारचिन्तामणौ, श्रीअजितसेन

'जब महावादी श्रीसमन्तभद्र (सभास्थान आदिमे) आते थे तो कुवादीजन नीचा मुख करके अगूठोंसे पृथ्वी कुरेदने लगते थे—अर्थात् उन लोगोंपर—प्रतिवादियोंपर—समन्तभद्रका इतना

प्रभाव पडता था कि वे उन्हें देखते ही विषण्ण-वदन हो जाते और किंकर्तव्यविमूढ बन जाते थे।

*अवटुतटमटति झटिति स्फुट-पटु-वाचाट-धूर्जटेर्जिह्वा ।
वादिनि समन्तभद्रे स्थितवति का कथाऽन्येषाम् ॥

—अलंकारचिन्तामणौ, विक्रान्तकौरवे च

'वादी समन्तभद्रकी उपस्थितिमें, चतुराईके साथ स्पष्ट शीघ्र और बहुत बोलनेवाले धूर्जटिकी—तन्नामक महाप्रतिवादी विद्वान्‌की—जिह्वा ही जब शीघ्र अपने बिलमें घुस जाती है—उसे कुछ बोल नहीं आता—तो फिर दूसरे विद्वानोंकी तो कथा ही क्या है? उनका अस्तित्व तो समन्तभद्रके सामने कुछ भी महत्व नहीं रखता।'

---

* यह पद्य शकसम्वत् १०५० में उत्कीर्ण हुए श्रवणबेल्गोलके शिलालेख नं० ५४ (६७) में भी थोडेसे परिवर्तनके साथ पाया जाता है। वहाँ 'धूर्जटेर्जिह्वा' के स्थानपर 'धूर्जटेरपि जिह्वा' और 'सति का कथाऽन्येषां' की जगह 'तव सदसि भूप कास्थाऽन्येषां' पाठ दिया है, और इसे समन्तभद्रके वादारंभ-समारंभ-समयकी उक्तियोंमें शामिल किया है। पद्यके उस रूपमें धूर्जटिके निरुत्तर होनेपर अथवा धूर्जटिकी गुरुतर पराजयका उल्लेख करके राजासे पूछा गया है कि 'धूर्जटि जैसे विद्वान्‌की ऐसी हालत होनेपर अब आपकी सभाके दूसरे विद्वानोंकी क्या आस्था है?—क्या उनमेंसे कोई वाद करनेकी हिम्मत रखता है?'

११ समन्तभद्र-जयघोष—

जीयात्समन्तभद्रोऽसौ भव्य-कैरव-चन्द्रमाः ।
दुर्वादि-वाद-कण्डूनां शमनैकमहौषधिः ॥

—हनुमच्चरित्रे, श्रीब्रह्मअजित.

'वे स्वामी समन्तभद्र जयवन्त हों—अपने ज्ञान-तेजसे हमारे हृदयोंको प्रकाशित करें—जो भव्यरूपी कुमुदोंको प्रफुल्लित करनेवाले चन्द्रमा थे और दुर्वादियोंकी वादरूपी खाज (खुजली) को मिटानेके लिये अद्वितीय महौषधि थे—जिन्होंने कुवादियोंकी बढ़ती हुई वादाभिलापाको ही नष्ट कर दिया था।'

समन्तभद्रस्स चिराय जीयाद्वादीभ-वज्रांकुश-सूक्तिजालः ।
यस्य प्रभावात्सकलावनीयं वंध्यास दुर्वादुक-वार्त्तयाऽपि ॥

श्रवणबेल्गोल-शिलालेख न० १०५

'वे स्वामी समन्तभद्र चिरजयी हों—चिरकाल तक हमारे हृदयोंमें सविजय निवास करें—, जिनका सूक्तिसमूह—सुन्दर-प्रौढ युक्तियोंको लिये हुए प्रवचन—वादिरूप-हस्तियोंको वशमें करनेके लिये वज्रांकुशका काम देता है और जिनके प्रभावसे यह सम्पूर्ण पृथ्वी एक बार दुर्वादुकोंकी वार्तासे भी विहीन होगई थी—उनकी कोई बात भी नहीं करता था।'

कार्यादेर्भेद एव स्फुटमिह नियतः सर्वथा कारणादे-
रित्याद्येकान्तवादोद्धततर-मतयः शान्ततामाश्रयन्ति ।

प्रायो यस्योपदेशादविघटितनयान्मानमूलादलंघ्यात्
स्वामी जीयात्स शश्वत्प्रथिततरयतीशोऽकलङ्कोरुकीर्त्तिः ॥

—अष्टसहस्र्या, श्रीविद्यानन्दाचार्यः

'जिनके नय-प्रमाण-मूलक अलंघ्य उपदेशसे—प्रवचनको सुनकर—महाउद्धतमति वे एकान्तवादी भी प्रायः शान्तताको प्राप्त हो जाते हैं जो कारणसे कार्यादिकका सर्वथा भेद ही नियत मानते हैं अथवा यह स्वीकार करते हैं कि कारण—कार्यादिक सर्वथा अभिन्न ही हैं—एक ही हैं—वे निर्मल तथा विशाल-कीर्तिसे युक्त अतिप्रसिद्ध मुनिराज स्वामी समन्तभद्र सदा जय-वन्त रहें—अपने प्रवचन-प्रभावसे बराबर लोक-हृदयोंको प्रभावित करते रहें।'

सरस्वती-स्वैर-विहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखा मुनीश्वराः ।
जयन्ति वाग्वज्र-निपात-पाटित-प्रतीपराद्धान्त-महीध्रकोटयः ॥

—गद्यचिन्तामणौ, श्रीवादीभसिंहाचार्यः

'वे मुनिराज स्वामी समन्तभद्र जयवन्त हैं—सदा ही जय-शील हैं, अपने पाठकों तथा अनुचिन्तकोंके अन्तःकरणपर अपना सिक्का जमानेवाले हैं—जो सरस्वतीकी स्वच्छंद विहार-भूमि थे—जिनके हृदय-मन्दिरमें सरस्वती-देवी बिना किसी रोक-टोकके पूरी अजादीके साथ विचरती थी, और इसलिये जो असाधारण विद्याके धनी थे और उनमें कवित्व—वाग्मित्वादि शक्तियाँ उच्च-कोटिके विकासको प्राप्त हुई थीं,—और जिनके वचनरूपी वज्रके निपातसे प्रतिपक्षी सिद्धान्तरूप-पर्वतोंकी चोटियाँ खण्ड खण्ड हो गई थीं—अर्थात समन्तभद्रके आगे बड़े बड़े प्रतिपक्षी सिद्धा-

न्तोंका प्राय कुछ भी गौरव नहीं रहा था और न उनके प्रतिपादक प्रतिवादीजन ऊँचा मुँह करके ही सामने खड़े हो सकते थे।'

१२ समन्तभद्र-विनिवेदन—

समन्तभद्रादि-महाकवीश्वराः कुवादि-विद्या-जय-लब्ध-कीर्तयः।
सुतर्क-शास्त्रामृतसार-सागरा मयि प्रसीदन्तु कवित्वकांक्षिणि ॥

—वरागचरित्रे, श्रीवर्धमानसूरि

'जो समीचीन-तर्कशास्त्ररूप-अमृतके सार-सागर थे और कुवादियों (प्रतिवादियों) की विद्यापर जयलाभ करके यशस्वी हुए थे वे महाकवीश्वर—उत्तमोत्तम नूतन सन्दर्भोंकी रचना करनेवाले—स्वामी समन्तभद्र मुझ कविता-कांक्षीपर प्रसन्न होवें—उनकी विद्या मेरे अन्तःकरणमें स्फुरायमान होकर मुझे सफल-मनोरथ करे, यह मेरा एक विशेष निवेदन है।'

श्रीमत्समन्तभद्रादिकवि-कुञ्जर-सञ्चयम् ।
मुनिवन्द्यं जनानन्दं नमामि वचनश्रियै ॥

—अलंकारचिन्तामणौ, श्रीअजितसेनाचार्य

'मुनियोंके द्वारा वन्दनीय और जगतजनोंको आनन्दित करनेवाले कविश्रेष्ठ श्रीसमन्तभद्र आचार्यको मैं अपनी 'वचनश्री' के लिये—वचनोंकी शोभा बढाने अथवा उनमें शक्ति उत्पन्न करनेके लिये—नमस्कार करता हूँ—स्वामी समन्तभद्रका यह वन्दन-आराधन मुझे समर्थ लेखक तथा प्रवक्ता बनानेमें समर्थ होवे।'

श्रीमत्समन्तभद्राद्याः काव्य-माणिक्यरोहणाः ।
सन्तु नः संततोत्कृष्टाः सूक्तिरत्नोत्करप्रदाः ॥

—यशोधरचरिते श्रीवादिराजसूरिः

'जो काव्यों—नूतन सन्दर्भों—रूप-माणिक्यों (रत्नों) की उत्पत्तिके स्थान है वे अति उत्कृष्ट श्रीसमन्तभद्रस्वामी हमें सूक्ति-रूपी रत्नसमूहोंको प्रदान करनेवाले होवें—अर्थात स्वामी समन्त-भद्रके आराधन और उनकी भारतीके भले प्रकार अध्ययन और मननके प्रसादसे हम अच्छी अच्छी सुन्दर जँची-तुली रचनाएँ करनेमे समर्थ होवें ।'

१३ समन्तभद्र-हृदिस्थापन—

स्वामी समन्तभद्रो मेऽहर्निशं मानसेऽनघः ।
तिष्ठताज्जिनराजोद्यच्छासनाम्बुधिचन्द्रमाः ॥

—रत्नमालाया, श्रीशिवकोटि'

'वे निष्कलंक स्वामी समन्तभद्र मेरे हृदयमे दिन-रात स्थित रहें जो जिनराजके—भगवान् महावीरके—ऊँचे उठते हुए शासन-समुद्रको बढ़ानेके लिये चन्द्रमा है—अर्थात जिनके उदयका निमित्त पाकर वीरभगवानका तीर्थ-समुद्र खूब वृद्धिको प्राप्त हुआ है और उसका प्रभाव सर्वत्र फैला है* ।'

---

* वेलूर ताल्लुकेके शिलालेख नं० १७ (E C,V) मे भी, जो रामानुजाचार्य-मन्दिरके अहातेके अन्दर सौम्य-नायकी—मन्दिरकी छतके एक पत्थरपर उत्कीर्ण है और जिसमें उसके उत्कीर्ण होनेका समय शक सं० १०५६ दिया है, ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि श्रुत-केवलियो तथा और भी कुछ आचार्योंके बाद समन्तभद्रस्वामी श्रीवर्ध-मान महावीरस्वामीके तीर्थकी—जैनमार्गकी—सहस्रगुणी वृद्धि करते हुए उदयको प्राप्त हुए हैं ।

१७

श्रीसिद्धसेन-स्मरण

जगत्प्रसिद्धबोधस्य वृषभस्येव निस्तुषाः ।
बोधयन्ति सतां बुद्धिं सिद्धसेनस्य सूक्तयः ॥

—हरिवंशपुराणे, श्रीजिनसेनसूरि'

'श्रीसिद्धसेनाचार्यकी निर्मल सूक्तियाँ (सुन्दर उक्तियाँ) जगत-प्रसिद्ध बोध (केवलज्ञान) के धारक भगवान् वृषभदेवकी निर्दोष सूक्तियोंकी तरह सत्पुरुषोंकी बुद्धिको बोधित करती हैं—उसे विकसित करती हैं ।

प्रवादि-करि-यूथानां केशरी नय-केशरः ।
सिद्धसेनकविर्जीयाद्विकल्प-नखरांकुरः ॥

—आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्यः

'जो प्रवादिरूप-हाथियोंके समूहके लिये विकल्परूप-नुकीले नखोंसे युक्त और नयरूप-केशरोंको धारण किये हुए केशरी-सिंह हैं, वे श्रीसिद्धसेन-कवि जयवन्त हों—अपने प्रवचनद्वारा मिथ्यावादियोंके मतोंका निरसन करते हुए, सदा ही लोक हृदयोंमें अपना सिक्का जमाए रक्खें—अपने वचन-प्रभावको अङ्कित किये रहें ।'

सदुक्ति-कल्पलतिकां सिञ्चन्तः करुणामृतैः ।
कवयः सिद्धसेनाद्या वर्धयन्तु हृदिस्थिताः ॥

—यशोधरचरिते, श्रीमुनिकल्याणकीर्ति

'हृदयमें स्थित हुए श्रीसिद्धसेन-जैसे कवि मेरी उक्तिरूपी छोटीसी कल्पलताको करुणाऽमृतसे सींचते हुए उसे वृद्धिगत करें—मैं सिद्धसेन-जैसे महाप्रभावशाली कवियोंको अधिकाधिक-रूपसे हृदयमें धारण करके अपनी वाणीको उत्तरोत्तर पुष्ट और शक्ति-सम्पन्न बनानेमें समर्थ होऊँ।'

१८

श्रीदेवनन्दि-पूज्यपाद-स्मरण

यो देवनन्दि-प्रथमाभिधानो बुद्ध्या महत्या स जिनेन्द्रबुद्धिः।
श्रीपूज्यपादोऽजनि देवताभिर्यत्पूजितं पादयुगं यदीयम् ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ४०

'जिनका प्रथम नाम—गुरुद्वारा दिया हुआ दीक्षानाम—'देवनन्दी' था, जो बादको बुद्धिकी प्रकर्षताके कारण 'जिनेन्द्र-बुद्धि' कहलाए, वे आचार्य 'पूज्यपाद' नामसे इसलिये प्रसिद्ध हुए हैं कि उनके चरणोंकी देवताओंने आकर पूजा की थी।'

श्रीपूज्यपादोद्धृतधर्मराज्यस्ततः सुराधीश्वरपूज्यपादः।
यदीयवैदुष्यगुणानिदानीं वदन्ति शास्त्राणि तदुद्धृतानि ॥
धृतविश्वबुद्धिरयमत्र योगिभिः कृतकृत्यभावमविभ्रदुच्चकैः।
जिनवद्बभूव यदनङ्गचापहृत् स जिनेन्द्रबुद्धिरिति साधु वर्णितः॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० १०८

'श्रीपूज्यपादने धर्मराज्यका उद्धार किया था—लोकमें धर्मकी पुन प्रतिष्ठा की थी—इसीसे आप देवताओंके अधिपति-द्वारा पूजे गये और 'पूज्यपाद' कहलाये। आपके पाण्डित्य (विद्वत्ता) पूर्ण गुणोंको आज भी आपके द्वारा उद्धार पाये हुए—रचे हुए—शास्त्र बतला रहे हैं—उनका खुला गान कर रहे हैं। आप जिनेन्द्रकी तरह विश्वबुद्धिके धारक—समस्त शास्त्रविषयोंके पारगत—थे, कामदेवको जीतनेवाले थे और ऊँचे दर्जेके कृतकृत्यभावको धारण किये हुए थे, इसीसे योगियोंने आपको ठीक ही 'जिनेन्द्रबुद्धि' कहा है।'

श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौपधर्द्धि-
र्जीयाद्विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः।
यत्पादधौतजल-संस्पर्शप्रभावात्
कालायसं किल तदा कनकीचकार ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० १०८

'जो अद्वितीय औषध-ऋद्धिके धारक थे, विदेह-स्थित जिनेन्द्र भगवानके दर्शनसे जिनका गात्र (शरीर) पवित्र होगया था और जिनके चरण-धोए जलके स्पर्शसे एक समय लोहा भी सोना बन गया था, वे श्रीपूज्यपाद मुनि जयवन्त हों—अपने गुणोंसे लोकहृदयोंको वशीभूत करें।'

कवीनां तीर्थकृद्देवः किंतरां तत्र वर्ण्यते।
विदुषां वाङ्मलध्वंसि तीर्थं यस्य वचोमयम् ॥

—आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्य

'जिनका वाङ्मय—शब्दशास्त्ररूप-व्याकरण—तीर्थ विद्वज्जनोंके वचनमलको नष्ट करनेवाला है, वे आचार्य श्रीदेवनन्दी

कवियोंके—नूतन सदर्भ रचनेवालोंके—तीर्थंकर है—काव्यतीर्थ-के विधाता है। उनके विषयमे और अधिक क्या कहा जाय ?'

अचिन्त्य-महिमा देवः सोऽभिवन्द्यो हितैपिणा।
शब्दाश्च येन सिद्ध्यन्ति साधुत्वं प्रतिलम्भिताः॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरि'

'जिनके द्वारा—जिनके व्याकरणशास्त्रको लेकर—शब्द भले प्रकार सिद्ध होते हैं, वे देवनन्दी अचिन्त्य-महिमा-युक्त देव है और अपना हित चाहनेवालोंके द्वारा सदा वन्दना किये जानेके योग्य हैं।'

पूज्यपादः सदा पूज्यपादः पूज्यैः पुनातु माम्।
व्याकरणार्णवो येन तीर्णो विस्तीर्णसद्गुणः॥

—पाण्डवपुराणे, श्रीशुभचन्द्रसूरि

'जो पूज्योंके द्वारा भी सदा पूज्यपाद हैं, व्याकरण-समुद्रको तिर गये है और विस्तृत सद्गुणोंके धारक है, वे श्रीपूज्यपाद आचार्य मुझे सदा पवित्र करे—नित्य ही हृदयमे स्थित होकर पापोंसे मेरी रक्षा करें।'

अपाकुर्वन्ति यद्वाचः काय-वाक्-चित्तसंभवम्।
कलङ्कमङ्गिनां सोऽयं देवनन्दी नमस्यते॥

—ज्ञानार्णवे, श्रीशुभचन्द्रसूरि

'जिनके वचन प्राणियोंके काय, वाक्य और मन सम्बन्धी दोषोंको दूर कर देते है—जिनके वैद्यक-शास्त्रसे (उसके सम्यक् प्रयोगसे) शरीरके, व्याकरणशास्त्रसे वचनके और समाधिशास्त्रसे

मनके विकार दूर हो जाते हैं—उन श्रीदेवनन्दी आचार्यको नमस्कार है।'

> न्यासं जैनेन्द्रसंज्ञं सकलबुधनुतं पाणिनीयस्य भूयो-
> न्यासं शब्दावतारं मनुजततिहितं वैद्यशास्त्रं च कृत्वा।
> यस्तत्त्वार्थस्य टीकां व्यरचयदिह भात्यसौ पूज्यपाद-
> स्वामी भूपालवन्द्यः स्वपरहितवचः पूर्णदृग्बोधवृत्तः॥
>
> —नगरताल्लुक-शिलालेख न० ४६

'जिन्होंने सकल बुधजनोंसे स्तुत 'जैनेन्द्र' नामका न्यास (व्याकरण) बनाया, पुन पाणिनीय व्याकरणपर 'शब्दावतार' नामका न्यास लिखा तथा मनुज-समाजके लिये हितरूप वैद्यक शास्त्रकी रचना की और इन सबके बाद तत्त्वार्थसूत्रकी टीका (सर्वार्थसिद्धि) का निर्माण किया, वे राजाओंसे वन्दनीय—अथवा दुर्विनीत राजासे पूजित—स्वपर-हितकारी वचनों (ग्रंथों) के प्रणेता और दर्शन-ज्ञान-चरित्रसे परिपूर्ण श्रीपूज्यपाद स्वामी (अपने गुणोंसे) खूब ही प्रकाशमान हैं।'

> जैनेन्द्रं निजशब्दभागमतुलं सर्वार्थसिद्धिः परा
> सिद्धान्ते निपुणत्वमुद्धवकवितां जैनाभिषेकः स्वकः।
> छन्दः सूक्ष्मधियं समाधिशतकं स्वास्थ्यं यदीयं विदा-
> माख्यातीह स पूज्यपादमुनिपः पूज्यो मुनीनां गणैः॥
>
> —श्रवणबेल्गोल-शिलालेख न० ४०

'जिनका 'जैनेन्द्र' (व्याकरण) शब्दशास्त्रोंमें अपने अतुलित भागको, 'सर्वार्थसिद्धि' (तत्त्वार्थटीका) सिद्धान्तमे बडी निपुणता-

को 'जैनाभिषेक' ऊँचे दर्जेकी कविताको, 'छन्दशास्त्र' बुद्धिकी सूक्ष्मता (रचनाचातुर्य) को और समाधिशतक' जिनकी स्वात्मस्थिति (स्थितिप्रज्ञता) को संसारमें विद्वानोंपर प्रकट करता है वे श्रीपूज्यपाद मुनीन्द्र मुनियोंके गणोंसे पूजनीय हैं।'

१६

श्रीपात्रकेसरि-स्मरण

भूभृत्पादानुवर्ती सन् राजसेवापराङ्मुखः ।
संयतोऽपि च मोक्षार्थी भात्यसौ पात्रकेसरी ॥

—नगरताल्लुक शिलालेख नं० ४६

'जो राजपदसेवी राजसेवासे पराङ्मुख होकर—उसे छोड़कर—मोक्षके अर्थी संयमी मुनि बने हैं वे पात्रकेसरी (स्वामी) भूभृत्पादानुवर्ती हुए—तपस्याके लिये गिरिचरणकी शरणमें रहते हुए—खूब ही शोभाको प्राप्त हुए हैं।'

महिमा स पात्रकेसरिगुरोः परं भवति यस्य भक्त्यासीत् ।
पद्मावती सहाया त्रिलक्षणकदर्थनं कर्तुम् ॥

—श्रवणबेल्गोल-शिलालेख नं० ५४

'जिनकी भक्तिसे पद्मावती (देवी) 'त्रिलक्षणकदर्थन' करनेमें—बौद्धों द्वारा प्रतिपादित अनुमान-विषयक हेतुके त्रिरूपात्मक (पक्ष-धर्मत्व, सपक्ष-सत्व और विपक्ष-व्यावृत्तिरूप) लक्षणका

विस्तारके साथ खण्डन करनेके लिये 'त्रिलक्षणकदर्थन' नामक ग्रंथके निर्माण करनेमें—जिनकी सहायक हुई है, उन श्रीपात्र-केसरी गुरुकी महिमा महान है—असाधारण है।'

भट्टाकलङ्क-श्रीपाल-पात्रकेसरिणां गुणाः ।
विदुषां हृदयारूढा हारायन्तेऽतिनिर्मलाः ॥

—आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्य

'भट्टाकलङ्क और श्रीपाल-जैसे आचार्योंके अतिनिर्मल गुणोंके साथ पात्रकेसरी आचार्यके अतिनिर्मल गुण भी विद्वानोंके हृदयोंपर हारकी तरहसे आरूढ हैं—विद्वज्जन उन्हें हृदयमें धारणकर अतिप्रसन्न होते तथा शोभाको पाते हैं।'

विप्रवंशाग्रणीः सूरिः पवित्रः पात्रकेसरी ।
स जीयाज्जिन-पादाब्ज-सेवनैक-मधुव्रतः ॥

—सुदर्शनचरित्रे, श्रीविद्यानन्दी

'वे पवित्रात्मा श्रीपात्रकेसरी सूरि जयवन्त हों—लोकहृदयों-पर सदा अपने गुणोंका सिक्का जमानेमें समर्थ हों—जो ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होकर उसके अग्रनेता थे और (बादको) जिनेन्द्रदेव-के पद-कमलोंका सेवन करनेवाले असाधारण मधुकर (भ्रमर) बने थे—जिन धर्ममें दीक्षित होकर जिनदेवकी उपासना-आरा-धनाका ही जिनके एक मात्र व्रत था।'
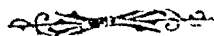
२०

श्रीअकलङ्क-स्मरण

श्रीमद्भट्टाऽकलङ्कस्य पातु पुण्या सरस्वती ।
अनेकान्त-मरुन्मार्गे चन्द्रलेखायितं यया ॥

—ज्ञानार्णवे, श्रीशुभचन्द्राचार्य

'श्रीसम्पन्न भट्ट-अकलंकदेवकी वह पुण्या सरस्वती—पवित्र भारती—हमारी रक्षा करो—हमें मिथ्यात्वरूपी गर्तमें पडनेसे बचाओ—जो अनेकान्तरूपी आकाशमें चन्द्रमाके समान देदीप्यमान है—सर्वोत्कृष्टरूपसे वर्तमान है। भावार्थ—श्री अकलंकदेवकी मङ्गलमय-वचनश्री पद पदपर अनेकान्तरूपी सन्मार्गको व्यक्त करती है और इस तरह अपने उपासकों एवं शरणागतोंको मिथ्या-एकान्तरूप कुमार्गमें लगने नहीं देती। अतः हम उस अकलङ्क-सरस्वतीकी शरणमें प्राप्त होते हैं, वह अपने दिव्य-तेज-द्वारा कुमार्गसे हमारी रक्षा करो।'

जीयात्समन्तभद्रस्य देवागमनसंज्ञिनः ।
स्तोत्रस्य भाष्यं कृतवानकलंको महर्द्धिकः ॥

—नगर-ताल्लुक, शिमोगा-शिलालेख नं० ४६

'जिन्होंने स्वामी समन्तभद्रके 'देवागम' नामक स्तोत्रका भाष्य रचा है—उसपर 'अष्टशती' नामका विवरण लिखा है—वे महाऋद्धिके धारक अकलंकदेव जयवन्त हों—अपने प्रभावसे सदा लोक-हृदयोंमें व्याप्त रहें।'

अकलङ्कगुरुर्जीयादकलङ्कपदेश्वरः ।
बौद्धानां बुद्धि-वैधव्य-दीक्षागुरुरुदाहृतः ॥

—हनुमच्चरिते, श्रीब्रह्मअजित

'जो बौद्धोंकी बुद्धिको वैधव्य-दीक्षा देनेवाले गुरु कहे जाते हैं—जिनके सामने बौद्ध विद्वानोंकी बुद्धि विधवा जैसी दशाको प्राप्त होगई थी उसका ऐसा कोई स्वामी नहीं रहा था जो बौद्ध-सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठाको कायम रख सके—वे अकलकपदके अधिपति श्रीअकलकगुरु जयवन्त हों—चिरकालतक हमारे हृदय-मन्दिरमे विराजमान रहे ।'

तर्कभूवल्लभो देवः स जयत्यकलङ्कधीः ।
जगद्द्रव्यमुषो येन दण्डिताः शाक्यदस्यवः ॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरि

'जिन्होंने जगत्‌के द्रव्योंको चुरानेवाले—शून्यवाद-नैरात्म्य-वादादि सिद्धान्तोंके द्वारा जगत्‌के द्रव्योंका अपहरण करनेवाले-उनका अभाव प्रतिपादन करनेवाले—बौद्ध दस्युओंको दण्डित किया, वे अकलकबुद्धिके धारक तर्काधिराज श्रीअकलकदेव जयवन्त है—सदा ही अपनी कृतियोंसे पाठकोंके हृदयोंपर अपना सिक्का जमानेवाले है ।'

भट्टाकलङ्कोऽकृत सौगतादि-दुर्वाक्यपंकैस्सकलङ्कभूतम् ।
जगत्स्वनामेव विधातुमुच्चैः सार्थं समन्तादकलङ्कमेव ॥

—श्रवणबेलगोल-शिलालेख न० १०५

'बौद्धादि-दार्शनिकोंके मिथ्यैकान्तवादरूप दुर्वचन-पङ्कसे सकलक हुए जगत्‌को भट्टाकलकदेवने, अपने नामको मानों पूरी

तौरसे सार्थक करनेके लिये ही, अकलंक बना डाला है—जगत्-के जीवोंकी बुद्धिमें प्रविष्ट हुए एकान्त-मलको अपने अनेकान्त-मय-वचनप्रभावसे धो डाला है।'

इत्थं समस्तमतवादि-करीन्द्रदर्प-
मुन्मूलयन्नमलमानदृढप्रहारैः ।
स्याद्वाद-केसरसटाशततीव्रमूर्तिः
पञ्चाननो भुवि जयत्यकलङ्कदेवः ॥

—न्यायकुमुदचन्द्रे, श्रीप्रभाचन्द्राचार्य

'इस प्रकार जिन्होंने निर्दोष प्रमाणके दृढ प्रहारोंसे समस्त अन्यमतवादिरूप-गजेन्द्रोंके गर्वको निर्मूल कर दिया है वे स्याद्वादमय सैकडों केसरिरूप जटाओंसे प्रचण्ड एवं प्रभावशालिनी मूर्तिके धारक श्रीअकलंकदेव भूमण्डलपर केहरि-सिंहके समान जयशील हैं—अपनी प्रवचन-गर्जनासे सदा ही लोक-हृदयोंको विजित करनेवाले हैं।'

जीयाच्चिरमकलङ्कब्रह्मा लघुहव्वनृपति-वरतनयः ।
अनवरत-निखिलजन-नुतविद्यः प्रशस्तजन-हृद्यः ॥

—तत्त्वार्थवार्त्तिक-प्रथमाध्याय-प्रशस्ति

'जिनकी विद्या—ज्ञानमाहात्म्य—के सामने सदा सब जन नतमस्तक रहते थे और जो सज्जनोंके हृदयोंको हरनेवाले थे—उनके प्रेमपात्र एवं आराध्य बने हुए थे—वे लघुहव्वराजाके श्रेष्ठ-पुत्र श्रीअकलंकब्रह्मा—अकलंक नामके उच्चात्मा महर्षि—चिरकाल तक जयवन्त हों—अपने प्रवचनतीर्थ-द्वारा लोकहृदयोंमें सदा सादर विराजमान रहें।'

देवस्याऽनन्तवीर्योऽपि पदं व्यक्तुं तु सर्वतः ।
न जानीतेऽकलङ्कस्य चित्रमेतत्परं भुवि ॥
अकलङ्कवचोऽम्भोधेः सूक्तरत्नानि यद्यपि ।
गृह्यन्ते वहुभिः स्वैरं सद्रत्नाकर एव सः ॥

—सिद्धिविनिश्चये, श्रीअनन्तवीर्याचार्य.

'अनन्तवीर्य होकर—कहलाकर—भी मुझे अकलकदेवके पदसमूह (शास्त्र) को पूरी तौरसे व्यक्त करना नहीं आता—मैं उसकी व्याख्यामे अपनेको असमर्थ पाता हूँ, यह लोकमे बडे ही आश्चर्यकी बात है। अकलकके वचनसमुद्रसे यद्यपि बहुत विद्वानोंने स्वेच्छानुसार सूक्तरत्नोंको ग्रहण किया है—अपनी अपनी कृतियोंमे अकलककी सूक्तियोंको अपनाया है—फिर भी वह उत्तम (सूक्त-) रत्नोंका आकर—खजाना बना ही हुआ है—उसकी सद्रत्न-निधिका अन्त होनेमे नहीं आता।'

भूयोभेदनयावगाह-गहनं देवस्य यद्वाङ्मयम् ।
कस्तद्विस्तरतो विविच्य वदितुं मन्दः प्रभुर्मादृशः ॥

—न्यायविनिश्चय विवरणे, श्रीवादिराजसूरि

'श्रीअकलकदेवका जो प्रवचन—'न्यायविनिश्चय' ग्रन्थ—वहुभेदों तथा नयोंके अवगाहनसे गहन है—नाना प्रकारके भगों तथा नयोंकी विविक्षाको आत्मसात् करके अतिगभीर बना हुआ है—उसका विस्तारसे विवेचनात्मक कथन करनेके लिये मेरे जैसा मन्दबुद्धि कौन समर्थ हो सकता है ?—कोई भी नहीं।'

येनाऽशेषकुतर्कविभ्रमतमो निर्मूलमुन्मूलितम्
स्फारागाध-कुनीतिसार्थसरितो निःशेषतः शोषिताः ।

स्याद्वादाऽप्रतिमप्रभूतकिरणैः व्याप्तं जगत् सर्वतः
स श्रीमान् अकलङ्कभानुरसमो जीयात् जिनेन्द्रः प्रभुः ॥

—न्यायकुमुदचन्द्रे, श्रीप्रभाचन्द्राचार्य

'जिन्होंने स्याद्वादरूप-अनुपम-समर्थ किरणोंसे कुतर्कोत्पन्न सम्पूर्ण विभ्रमान्धकारको मूलसे उन्मूलित किया है—उसका पूर्णत विनाश किया है, कुनयरूप विस्तृत तथा अगाध नदियोंके समूहको पूरी तौरसे सुखा दिया है और अपनी उन किरणोंसे जगतको सर्वत्र व्याप्त किया है वे अद्वितीय सूर्य श्रीअकलङ्कप्रभु जयवन्त हों, जो विजेताओंमे प्रधान थे।'

मिथ्यायुक्तिपलालकूटनिचयं प्रज्वाल्य निःशेषतः
सम्यग्युक्तिमहांशुभिः पुनरियं व्याख्या परोक्षे कृता ।
येनासौ निखिल-प्रमाण-कमल-प्राज्य-प्रबोधप्रदः
भास्वानेष जयत्यचिन्त्य-महिमा शास्ताऽकलङ्को जिनः ॥३॥

—न्यायकुमुदचन्द्रे, श्रीप्रभाचन्द्राचार्य

'जिन्होंने समीचीन-युक्तियोंरूप महती किरणोंसे मिथ्या-युक्तियोंरूप पुरालके-पूलोंके समूहको पूर्णत जलाकर परोक्ष-प्रमाणकी व्याख्या की है—उसे भले प्रकार स्पष्ट तथा व्यक्त किया है—वे सम्पूर्ण प्रमाण-कमलोंके उत्कट उद्बोधक—उन्हे पूर्णत विकसित करनेवाले—अचिन्त्य-महिमाके धारक, विजयी और शास्ता अकलंकदेव जयवन्त हैं—लोक-हृदयोंमे अपना प्रभाव अंकित किये हुए है।'

२१

श्रीविद्यानन्द-स्मरण

अलञ्चकार यस्सार्वमाप्तमीमांसितं मतम् ।
स्वामिविद्यादिनन्दाय नमस्तस्मै महात्मने ॥
यः प्रमाणाप्तपत्राणां परीक्षाः कृतवान्नुमः ।
विद्यानन्दमिनं तं च विद्यानन्दमहोदयम् ॥
विद्यानन्दस्वामी विरचितवान् श्लोकवार्तिकालंकारम् ।
जयति कवि-विबुध-तार्किकचूडामणिरमलगुणनिलयः ॥

—शिमोगा नगरताल्लुक-शिलालेख न० ४६

'जिन्होंने सर्वहितकारी आप्तमीमांसित-मतको अलंकृत किया है—स्वामी समन्तभद्रके परमकल्याणरूप 'आप्तमीमांसा' ग्रन्थको अपनी अष्टसहस्री टीकाके द्वारा सुशोभित किया है—उन महान आत्मा स्वामी विद्यानन्दको नमस्कार है।'

'जो प्रमाणों, आप्तों तथा पत्रोंकी परीक्षा करनेवाले हुए हैं—जिन्होंने प्रमाणपरीक्षा, आप्तपरीक्षा और पत्रपरीक्षा जैसे महत्वके ग्रन्थ लिखे हैं—उन विद्या तथा आनन्दके महान् उदयको लिये हुए अथवा (प्रकारान्तरसे) 'विद्यानन्द-महोदय' ग्रन्थके रचयिता स्वामी विद्यानन्दकी हम स्तुति करते हैं—उनकी विद्याका यशोगान करते हैं।'

'जिन्होंने 'श्लोकवार्तिकालंकार' नामका ग्रंथ रचा है वे कवियोंके चूडामणि, विबुधजनोंके मुकुटमणि और तार्किकोंमे

प्रधान तथा निर्मल गुणोंके आश्रयस्थान श्रीविद्यानन्दस्वामी जयवन्त है—सदा ही अपने पाठकों-विद्वज्जनोंके हृदयमे अपने अगाध पाण्डित्यकी छाप जमानेवाले है।'

ऋजुसूत्रं स्फुरद्रत्नं विद्यानन्दस्य विस्मयः।
शृण्वतामप्यलङ्कारं दीप्तिरंगेषु रङ्गति ॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरिः

'श्रीविद्यानन्दाचार्यके ऋजुसूत्ररूप तथा देदीप्यमानरत्नरूप अलकारको जो सुनते भी है उनके भी अगोंमे दीप्ति दौड जाती है यह आश्चर्यकी बात है। अर्थात् अलकारों-आभूषणोंको जो मनुष्य धारण करता है उसीके अगोंमे दीप्ति दौड़ा करती है—सुननेवालोंके अगोंमे नहीं, परन्तु श्रीविद्यानन्दस्वामीके सत्यसूत्रमय और स्फुरद्रत्नरूप आप्तमीमासाऽलकार (अष्टसहस्री) और श्लोकवार्तिकालकार (तत्त्वार्थटीका) ऐसे अद्‌भुत अलकार है कि उनके सुननेसे भी अगोंमें दीप्ति दौड जाती है—सुननेवालोंके अगोंमे विद्युत्तेजका-सा कुछ ऐसा सचार होने लगता है कि एकदम प्रसन्नता जाग उठती है।'

२२
श्रीमाणिक्यनन्दि-स्मरण

साभासं गदितं प्रमाणमखिलं संख्या-फल-स्वार्थतः
सुव्यक्तैः सकलार्थसार्थविषयैः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः।

येनाऽसौ निखिल-प्रबोध-जननो जीयाद्गुणाम्भोनिधिः
वाक्कीर्त्योः परमालयोऽत्र सततं माणिक्यनन्दिप्रभुः ॥

—प्रमेयकमलमार्तण्डे, श्रीप्रभाचन्द्राचार्यः

'जिन्होंने सकल अर्थसमूहको अपना विषय करनेवाले स्वल्प-(अल्पाक्षर), प्रसन्न (प्रसादगुणविशिष्ट) और सुव्यक्त (स्पष्ट) पदों (सूत्रवाक्यों) के द्वारा सपूर्ण प्रमाण और प्रमाणाभासका—सख्या, फल तथा स्वविषयकी दृष्टिसे कथन किया है, वे सकल प्रबोधके जनक, गुणसमुद्र, वाणी और कीर्तिके परमस्थान श्रीमाणिक्यनन्दिप्रभु लोकमे सदा जयवन्त होवें—अपने 'परीक्षा-मुखसूत्र' के द्वारा सदा लोकहृदयमे विराजित रहें।'

अकलङ्कवचोऽम्भोधेरुद्दध्रे येन धीमता ।
न्यायविद्याऽमृतं तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने ॥

—प्रमेयरत्नमालायां, श्रीलघुअनन्तवीर्यः

'जिन्होंने अकलङ्कदेवके वचन-समुद्रको मथकर उससे न्याय-विद्यारूप अमृत निकाला है—अकलङ्कके अगाध न्यायशास्त्रोंपरसे सार खींचकर 'परीक्षामुखसूत्र' की अमर रचना की है—उन बुद्धिमान आचार्य श्रीमाणिक्यनन्दीको नमस्कार हो।'

२३
श्रीअनन्तवीर्य-स्मरण

वन्दाम्यनन्तवीर्याब्दं यद्वागमृतवृष्टिभिः ।
जगज्जिघत्सन्निर्वाणः शून्यवादहुताशनः ॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरिः

'जिनकी वचनामृत-वृष्टियोंसे जगतको खा जाने—भस्मसात् कर देनेवाली शून्यवादरूप अग्नि शान्त होगई उन श्रीअनन्तवीर्याचार्यरूप मेघको मै नमस्कार करता हूँ ।'

गूढमर्थमकलङ्कवाङ्मयागाधभूमिनिहितं तदर्थिनाम् ।
व्यञ्जयत्यमलमनन्तवीर्यवाक् दीपवर्तिरनिशं पदे पदे ॥

न्यायविनिश्चय-विवरणे, श्रीवादिराजसूरि॰

'श्रीअनन्तवीर्यकी निर्मलवाणी—निर्दोषटीका—अकलङ्क वाङ्मयकी—अकलकदेवके सिद्धिविनश्चयादिशास्त्रोंकी—अगाध भूमिमे संनिहित—गहराईमे स्थित—गूढअर्थको पद पदपर व्यक्त करनेवाली समर्थ दीपशिखा है—टौर्चके समान है ।'

२४
श्रीप्रभाचन्द्र-स्मरण

अभिभूय निजविपक्षं निखिलमतोद्योतनो गुणाम्भोधिः ।
सविता जयतु जिनेन्द्रः शुभप्रबन्धः प्रभाचन्द्रः ॥

—न्यायकुमुदचन्द्र-प्रशस्ति

'अपने विपक्ष-समूहको पराजित करके जो समस्तमतोंके यथार्थ स्वरूपको प्रकाशित करनेवाले है वे गुण-समुद्र, जितेन्द्रियोंमे अग्रगण्य और शुभप्रबन्ध—न्यायकुमुदचन्द्र जैसे पुण्यप्रबन्धोंके विधाता—प्रभाचन्द्राचार्य नामके सूर्य जयवन्त हों—अपने वचन-तेजसे लौकिकजनोंके हृदयान्धकारको दूर [illegible] समर्थ होवें ।'

चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रकविं स्तुवे ।
कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाह्लादितं जगत् ॥

आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्य

'जिन्होंने चन्द्रमाका उदय करके—'न्यायकुमुदचन्द्र' ग्रन्थकी रचना करके—अथवा 'चन्द्रोदय' नामक ग्रन्थको रचकर जगत्को सदाके लिये आनन्दित किया है उन चन्द्र-किरण-समान उज्ज्वल यशके धारक कवि प्रभाचन्द्रकी मैं स्तुति करता हूँ ।'

माणिक्यनन्दी जिनराजवाणी-प्राणाधिनाथः परवादि-मर्दी ।
चित्रं प्रभाचन्द्र इह क्षमायां मार्त्तण्ड-वृद्धौ नितरां व्यदीपीत् ॥
सुखिने न्यायकुमुदचन्द्रोदयकृते नमः ।
शाकटायनकृत्सूत्रन्यासकर्त्रे व्रती(प्रभे)न्दवे ॥

—शिमोगा-नगरताल्लुक-शिलालेख नं० ४६

'जो श्रीमाणिक्य (आचार्य) को आनन्दित करनेवाले—उनके 'परीक्षामुख' ग्रन्थपर 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामका भाष्य लिखकर उनकी परोक्ष प्रसन्नता सम्पादन करनेवाले—हैं तथा जिनराजकी वाणीके प्राणाधार हैं—जिन्हें पाकर जिनवाणीके उत्कर्षमे वृद्धि हुई है। अथवा जो माणिक्यनन्दी—यतिराजकी वाणी (परीक्षामुख-सूत्र) के प्राणाधिपति हैं—प्रमेयकमलमार्तण्ड नामक भाष्यके द्वारा उसके प्राणों (तत्त्वों) के पूर्णत संरक्षक हैं। और जिन्होंने परिवादियोंका मर्दन किया है—उनके मिथ्याभिमानका खण्डन किया है—वे प्रभाचन्द्र इस पृथ्वीपर निरन्तर ही मार्तण्डकी वृद्धि-मे प्रदीप्त रहे हैं यह एक आश्चर्यकी बात है—अर्थात प्रभापूर्ण चन्द्रमा यद्यपि मार्त्तण्ड (सूर्य) की तेजोवृद्धिमे कोई सहायक नहीं

होता—उल्टा उसके तेजके सामने हतप्रभ होजाता है, परन्तु ये प्रभाचन्द्र मार्तण्ड (प्रमेयकमलमार्तण्ड) की तेजोवृद्धिमे निरन्तर ही अव्याहतशक्ति रहे है, यही एक विचित्रता है।'

'जो न्यायकुमुदचन्द्रके उदयकारक—जन्मदाता—हुए है और जिन्होंने शाकटायनके सूत्र—व्याकरणशास्त्र—पर न्यास रचा है, उन प्रभाचन्द्रमुनिको नमस्कार है।'

२५

श्रीवीरसेन-स्मरण

शब्दब्रह्मेति शाब्दैर्गणधरमुनिरित्येव राद्धान्तविद्भिः।
साक्षात्सर्वज्ञ एवेत्यवहितमतिभिः सूक्ष्मवस्तुप्रणीतः (प्रवीणैः?)
यो दृष्टो विश्वविद्यानिधिरिति जगति प्राप्तभट्टारकाख्यः
स श्रीमान् वीरसेनो जयति परमतध्वान्तभित्तंत्रकारः ॥

—धवला-प्रशस्ति

'जिन्हे शाब्दिकों (वैय्याकरणों) ने 'शब्दब्रह्म'के रूपमे, सिद्धान्तशास्त्रियोंने 'गणधरमुनि' के रूपमे, सावधानमतियोंने 'साक्षात्सर्वज्ञ' के रूपमे, और सूक्ष्मवस्तुविज्ञोंने 'विश्वविद्यानिधि' के रूपमे देखा—अनुभव किया—और जो जगत्मे 'भट्टारक' नामसे प्रसिद्धिको प्राप्त हुए, वे (लोकमे छाये हुए) अन्यमतोंके अन्धकारको भेदनेवाले शास्त्रकार—धवलादिके रचयिता—श्रीमान् वीरसेनाचार्य जयवन्त है—विद्वद्हृदयोंमे सब प्रकारसे अपना सिक्का जमाए हुए है।'

प्रसिद्ध-सिद्धान्त-गभस्तिमाली समस्तवैय्याकरणाधिराजः।
गुणाकरस्तार्किक-चक्रवर्ती प्रवादिसिंहो वरवीरसेनः॥

—धवला, प्रशस्ति

'श्रीवीरसेनाचार्य प्रसिद्ध सिद्धान्तों—षड्खण्डागमादिकों—को प्रकाशित करनेवाले सूर्य थे, समस्त वैय्याकरणोंके अधिपति थे, गुणोंकी खानि थे, तार्किकचक्रवर्ती थे और प्रवादिरूपी गजों-के लिये सिंह-समान थे।'

श्रीवीरसेन इत्यात्त-भट्टारकपृथुप्रथः।
स नः पुनातु पूतात्मा वादिवृन्दारको मुनिः॥
लोकवित्त्व कवित्वं च स्थितं भट्टारके द्वयं।
वाग्मिता वाग्मिनो यस्य वाचा वाचस्पतेरपि॥
सिद्धान्तोपनिबन्धानां विधातुर्मद्गुरोश्चिरम्।
मन्मनःसरसि स्थेयान्मृदुपादकुशेशयम्॥
धवलां भारतीं तस्य कीर्तिं च शुचि-निर्मलाम्।
धवलीकृतनिःशेषभुवनां तां नमाम्यहम्॥

—आदिपुराणे, श्रीजिनसेनाचार्यः

'जो भट्टारककी बहुत बड़ी ख्यातिको प्राप्त थे वे वादिशिरोमणि और पवित्रात्मा श्रीवीरसेन मुनि हमे पवित्र करें—हमारे हृदयमे निवास कर पापोंसे हमारी रक्षा करे।'

'जिनकी वाणीसे वाग्मी बृहस्पतिकी वाणीभी पराजित होती थी उन भट्टारक वीरसेनमे लौकिक विज्ञता और कविता दोनों गुण थे।'

'सिद्धान्तागमोंके उपनिबन्धों—धवलादिग्रन्थों—के विधाता श्रीवीरसेनगुरुके कोमल चरण-कमल मेरे हृदय-सरोवरमे चिर-काल तक स्थिर रहें।'

'श्रीवीरसेनकी धवला भारती—धवला-टीकांकित सरस्वती अथवा विशुद्ध वाणी—और चन्द्रमाके समान निर्मल कीर्तिको, जिसने अपने धवल प्रकाशसे इस सारे संसारको धवलित (उज्ज्वल) कर दिया है, मैं वन्दना करता हूँ।'

तत्र वित्रासिताशेष-प्रवादि-मद-वारणः ।
वीर-सेनाग्रणीर्वीरसेनभट्टारको बभौ ॥

—उत्तरपुराणे, श्रीगुणभद्रसूरिः

'मूलसंघान्तर्गत सेनान्वयमे वीरकी सेनाके अग्रणी (नेता) वीरसेन भट्टारक हुए हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण प्रवादिरूपी मस्त हाथियोंको परास्त किया था।'

तदन्वयाये विदुषां वरिष्ठः स्याद्वादनिष्ठः सकलागमज्ञः ।
श्रीवीरसेनोऽजनि तार्किकश्रीः प्रध्वस्तरागादिसमस्तदोषः ॥
यस्य वाचां प्रसादेन ह्यमेयं भुवनत्रयम् ।
आसीदष्टांगनैमित्तज्ञानरूपं विदां वरम् ॥

—विक्रान्तकौरवे, श्रीहस्तिमल्लः

'उन (स्वामी समन्तभद्र)के वंशमे श्रीवीरसेनाचार्य हुए हैं, जो कि विद्वानोंमे श्रेष्ठ थे स्याद्वादपर अपना दृढ निश्चय एवं आचार रखनेवाले थे, तार्किकोंकी शोभा थे और रागादि सम्पूर्ण-दोषोंका विध्वंस करनेवाले थे। साथ ही, जिनके वचनोंके प्रसादसे यह अज्ञेय भुवनत्रय विद्वानोंके लिये अष्टाङ्ग-निमित्तज्ञानका अच्छा विषय बन गया था।'

——

२६

श्रीजिनसेन-स्मरण

जिनसेनमुनेस्तस्य माहात्म्यं केन वर्ण्यते।
शलाकापुरुषाः सर्वे यद्वचोवशवर्तिनः॥

—पार्श्वनाथचरिते, श्रीवादिराजसूरि

'सम्पूर्ण शलाकापुरुष जिनके वचनके वशवर्ती हैं—जिन्होंने महापुराण लिखकर ६३ शलाकापुरुषोंको (उनके जीवन वृत्तान्तको) अपने अधीन किया है—उन श्रीजिनसेनाचार्यका माहात्म्य कौन वर्णन कर सकता है? कोई भी नहीं।'

याऽमिताऽभ्युदये पार्श्वजिनेन्द्र-गुण-संस्तुतिः।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिं संकीर्तयत्यसौ॥

—हरिवंशपुराणे, श्रीजिनसेनसूरि

'पार्श्वाभ्युदय' काव्यमें पार्श्वजिनेन्द्रकी जो अनुपम गुणस्तुति है, वह श्रीजिनसेनस्वामीकी कीर्तिका आज भी संकीर्तन—खुलागान—कर रही है।'

यदि सकलकवीन्द्र-प्रोक्तसूक्त-प्रचार-
श्रवण-सरसचेतास्तत्त्वमेव सखे! स्याः।
कविवर-जिनसेनाचार्य-वक्त्रारविन्द-
प्रणिगदित-पुराणाकर्णनाभ्यर्णकर्णः॥—अज्ञातकवि

'हे मित्र! यदि तुम सम्पूर्ण कवि-श्रेष्ठोंकी सूक्तियोंके प्रचारको सुनकर अपना हृदय सरस बनाना चाहते हो तो कविवर जिनसेनाचार्यके मुख-कमलसे विनिर्गत (कथित) पुराणको सुननेके लिये कानोंको समीप लाओ—'आदिपुराण' को ध्यानपूर्वक सुनो।'

२७

श्रीवादिराज-स्मरण

आरुह्याम्बरमिन्दुबिम्ब-रचितौत्सुक्यं सदा यद्यश-
श्छत्रं वाक्-चमरीज-राजि-रुचयोऽभ्यर्णं च यत्कर्णयोः।
सेव्यः सिंहसमर्च्य-पीठ-विभवः सर्व-प्रवादि-प्रजा-
दत्तोच्चैर्जयकार-सार-महिमा श्रीवादिराजो विदाम् ॥

—मल्लिषेणप्रशस्ति (श्र० शि० ५४)

'जिनका यशरूपी छत्र आकाशको सदैव घेरे हुए था और उसने चन्द्रबिम्बके लिये उत्सुकता उत्पन्न कर दी थी—चन्द्रमा भी जिनके यशके विस्तार और उसकी उज्ज्वलता तथा स्थिरताको देखकर अपनेको हीन अनुभव करता हुआ तद्रूप होनेके लिये उत्सुक बना हुआ था—, (प्रशंसा-) वाक्यरूपी चमर-समूहकी किरणें निरन्तर ही जिनके कानोंके समीप पड़ती थीं—जिन्हें अपना यशोगान स्पष्ट सुनाई पड़ता था—, जिनका आसनविभव (माहात्म्य) सदा ही सिंह-समर्च्य था—जयसिंह नरेशके द्वारा पूजित था—और सम्पूर्ण प्रवादीजन उच्च स्वरसे जिनकी महिमाका जयजयकार किया करते थे, वे श्रीवादिराजसूरि विद्वानोंके द्वारा सेवनीय हैं।

सदसि यदकलङ्कः कीर्तने धर्मकीर्ति-
र्वचसि सुरपुरोधा न्यायवादेऽक्षपादः।

इति समय-गुरूणामेकतः संगतानाम्
प्रतिनिधिरिव देवो राजते वादिराजः ॥

—नगर-ताल्लुक शिलालेख न० ३६

'जो सभामे अकलक थे—विद्वानों तथा राजाओंकी परिषदोंमे उपस्थित होकर अपना प्रभाव व्यक्त करनेमे अकलङ्कदेवके समान कुशल थे—, कीर्तन करनेमे—प्रतिपादन करनेके ढगमे—धर्मकीर्ति (बौद्धाचार्य)के सदृश दक्ष थे। बोलनेमे बृहस्पतिके तुल्य चतुर थे, और न्यायवादमे—न्यायपदार्थोंका विश्लेषण करनेमे—(न्यायदर्शनके प्रवर्तक) अक्षपाद (गौतम) के समान निपुण थे। वे श्रीवादिराजदेव इन विभिन्न धर्मगुरुओंके एकीभूत प्रतिनिधिरूपसे शोभायमान हुए हैं।

सत्साधु-स्मरण-मंगलपाठका पद्यानुक्रम